गणित

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वांग्मय से एक संकलन

Version-2

०५ जून २०१८

श्री ए. नागराज जी द्वारा प्रणेत मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) में से शब्दों के संदर्भों के खोजने के क्रम में यह "गणित" शब्द के संदर्भों का संकलन है। यदि यहाँ लिखे हुए और मध्यस्थ दर्शन के मूल वाङ्ग्मय में कोई अंतर मिले तो मूल वाङ्ग्मय को ही सही माना जाए। यहाँ लिखे हुए में त्रुटियों के सुधार और इसको और उपयोगी बनाने हेतु भागीदारी करने के लिए रोशनी साहू (sahuroshani@gmail.com) से संपर्क करें।

Version 0.1	Draft version created	Roshani Sahu, 14/03/2018
Version 0.2	Draft version created	Roshani Sahu, 05/06/2018

गणित की परिभाषा

- इकाइयों की पहचान और ऋण धन स्थिति रूप में इकाई की पहचान और निर्वाह।
- एक अथवा अनेक एक की ऋण धनात्मक क्रिया।

  (परिभाषा संहिता, संस्करण : 2012 मुद्रण: 14 जनवरी 2016, पेज नंबर: 65)

अन्य संदर्भ परिभाषा संहिता से :

- **गणितवादी** – गणना विधि से तथ्यों को प्रकाशित करना। **(पेज नंबर: 65)**
- **गणना** – जोड़ना, घटाना।

  – काल, क्रिया , विस्तार । **(पेज नंबर: 65)**
- **गणितात्मक** – आंकलनात्मक – सांख्यकी विधि से प्रकाशन। **(पेज नंबर: 65)**
- **गणितानुक्रम** – आंकलनात्मक विधि से स्पष्ट होना। **(पेज नंबर: 65)**
- जागृतिक्रम – **गणितवाद** से गुणवाद, गुणवाद से कारणवाद, कारणवाद से जागृतिवाद। **(पेज नंबर: 75)**
- अनन्त – संख्याकरण क्रिया से वस्तुऐं अधिक होना संख्या में, अग्राहृय होना या स्थिति में अगणित रूपात्मक अस्तित्व।

  – **गणितीय प्रक्रिया** में आवश्यकता से अधिक (कम या) धन – ऋण की स्थिति में पाया जाने वाला रूपात्मक अस्तित्व – उक्त दोनों स्थितियों में गणना कार्य अपने को अपूर्ण पाता है।

  – मानव में, से, के लिए सहअस्तित्व में समझने, चाहने, करने, उपयोग, सदुपयोग प्रयोजनकारी आवश्यकता से अधिक संख्या मात्रा व गुणों के रूप में वस्तुऐं वर्तमान है। **(पेज नंबर: 9)**
- अध्यापन – समझा हुआ को समझाना, सीखे हुए को सीखाना, किए हुए को कराना।

  – अधिष्ठान के साक्षी में अर्थ बोध कराने के लिए कारण गुण **गणित** पूर्वक किए गये संपूर्ण क्रिया कलाप।

  – हर विद्यार्थी स्वयं में विश्वास श्रेष्ठता का समान, प्रतिभा व व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक व्यवसाय में स्वावलबन योग्य शिक्षा संस्कार में पारंगत होने की क्रिया। **(पेज नंबर: 7)**

अनुक्रमणिका

“गणित” को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.

1. मानव व्यवहार दर्शन ४
2. मानव कर्म दर्शन ५
3. मानव अभ्यास दर्शन ९
4. मानव अनुभव दर्शन १०
5. समाधानात्मक भौतिकवाद ११
6. व्यवहारात्मक जनवाद १४
7. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद १५
8. व्यवहारवादी समाजशास्त्र १९
9. आवर्तनशील अर्थशास्त्र २२
10. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान २३
11. मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या ३०
12. जीवन विद्या – एक परिचय ३२
13. विकल्प ३३
14. जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु ३३
15. मानवीय आचरण सूत्र ३३
16. संवाद – भाग १ ३४
17. संवाद – भाग २ ३६

सन्दर्भ : मानव व्यवहार दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2015)

- पूर्व में वर्णित किया जा चुका है कि विकसित इकाई में अविकसित इकाई के अथवा विकसित सृष्टि में अविकसित सृष्टि के सभी गुण, स्वभाव, एवं धर्म विलय रूप में रहते ही हैं. तदनुसार मानव गलती करने का अधिकार लेकर तथा सही करने का अवसर एवं साधन लेकर जन्मता है. क्योंकि परंपरा में हर मानव, मानव–चेतना को पाया नहीं इसलिए सन २००० तक जीव–चेतना में जिया और जीव–चेतना में गलती करता ही है।
- उदाहरणार्थ: – एक अध्यापक कक्षा में **गणित** पढ़ाता है. अध्यापक सही ही पढ़ाता है और सबको समान रूप से संबोधित भी करता है, फिर भी विद्यार्थी गलती करते हैं. इससे यह सिद्ध होता है कि बालक के मन में भ्रमवश गलती करने की प्रवृत्ति है ही. इसी के साथ यह भी सिद्ध होता है कि मानवीय वातावरण व अध्यापन अर्थात अध्यापक के बोध कराने की क्षमता के आधार पर वही विद्यार्थी पुनः सही करने में समर्थ होता है. इससे यह सिद्ध होता है कि वातावरण तथा अध्ययन प्रत्येक मानव को एक अवसर व आवश्यकता के रूप में मौलिकतः प्राप्त है एवं जीव–चेतना में जीते हुए सही करने की प्रवृत्ति का साक्ष्य है. **(अध्याय: 4, पेज नंबर: 25)**
- विखंडन क्रिया से किसी का अस्तित्व मिटाया नहीं जा सकता है, क्योंकि **गणितशः** इकाई का विखंडन करते–करते भी कुछ शेष रह ही जाता है. मानव परंपरा में विखंडन को समुदायों के रूप में पहचाना जाता है और अखंडता में एकसूत्रता पूर्वक सम्पूर्ण मानव एक इकाई के रूप में पहचान में आता है. **(अध्याय: 9, पेज नंबर: 70)**
- निरीक्षण, परीक्षण एवं सर्वेक्षण प्रक्रिया द्वारा कारण, गुण, व **गणित** के संयोग से की गयी अवलोकन क्रिया द्वारा ही सत्यता का परिचय होता है. **(अध्याय: 12, पेज नंबर: 81)**
- प्रधानतः कारणानुक्रम से अध्यात्म ज्ञान का, गुणानुक्रम न्याय से बौद्धिक विज्ञान का और गणितानुक्रम नियम से भौतिक विज्ञान का अनुसंधान, आविष्कार और उपलब्धियाँ सार्थक होती हैं. **(अध्याय: 12, पेज नंबर: 84)**
- **गणितानुक्रम** नियम से क्रिया, प्रतिक्रिया एवं परिपाक (फल) का; गुणानुक्रम न्याय से ह्रास व जागृति का; कारणानुक्रम विधि से सापेक्ष एवं निरपेक्ष शक्ति ऊर्जा में सम्पूर्ण प्रकृति का अध्ययन आभास एवं अनुभव पूर्ण हुआ है. **(अध्याय: 12, पेज नंबर: 85)**
- हर भूमि पर पाया जाने वाला ऋतुमान, शीतमान, तापमान, और वर्षामान उस भूमि पर स्थित खनिज एवं वनस्पति के अनुपात पर निर्भर करता है, जिसका निर्णय परीक्षण एवं सर्वेक्षण पूर्वक **गणित** से सिद्ध होता है. **(अध्याय: 14, पेज नंबर: 92)**
- कारण, गुण और **गणितानुक्रम** न्याय से प्राप्त निर्णय की 'सिद्धांत' संज्ञा है तथा सिद्धांत से ही किसी भी क्रिया का बोध होता है. **(अध्याय: 14, पेज नंबर: 95)**
- काल, विस्तार तथा रचना–भेद की गणना **गणित** से है. **(अध्याय: 14, पेज नंबर: 95)**

सन्दर्भ : मानव कर्म दर्शन

(**संस्करण**: 2010, **मुद्रण**:2017)

- निर्णायक क्षमता कारण, गुण, **गणित** के रूप में, विवेचना क्षमता आत्मा के अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व एवं व्यवहार के नियमों को स्पष्ट करने की प्रबुद्धता के रूप में प्रत्यक्ष हैं। (**अध्याय**: 1, **पेज नंबर**: 25)
- परमाणुओं में कार्यरत अंशों के संख्या भेद होने से ही आचरण भेद होना पाया गया। ऐसे आचरण भेद के आधार पर ही परमाणु की प्रजाति और प्रजातियों की संख्या का निर्धारण करने का मानव ने प्रयास किया। इस धरती पर 108 प्रजातियों के परमाणु होने का दावा मानव अभी तक कर चुके हैं और प्रजाति के परमाणु को खोज करने की आशा बनाये हुए हैं।

  परमाणु को इस प्रकार समझने पर व्यवस्था केन्द्रित मानसिकता में हम मानव स्पष्ट हो जाते हैं। फलस्वरूप, मानव अपने में सहज व्यवस्था को पहचानने को तत्पर होना सहज रहा। इस क्रम में मानवीयतापूर्ण आचरण को समझना मानव के लिए सहज हो गया। इससे मूल्य, चरित्र, नैतिकता का संयुक्त अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन मानव परंपरा में, से, के लिए व्यवस्था का आधार होना पाया जाता है।

  इसी तथ्यवश पशु–संसार, वनस्पति–संसार और खनिज संसार – ठोस, तरल, विरल रूप में जितने भी प्रजाति **गणित** है, सभी के मूल में परमाणु ही है तथा जीवन भी परमाणु है। हर प्रजाति का परमाणु निश्चित आचरण करता है। इसलिए मानव भी (जो जीवन और शरीर का संयुक्त रूप है) निश्चित आचरणपूर्वक व्यवस्था में जीना चाहता है। परमाणु संरचना की महिमा आचरण में ही स्पष्ट होना और आचरण अपने में क्रिया के रूप में होना सहज रहा। (**अध्याय**: 3 (1), **पेज नंबर**: 57)

- इस धरती के ऊपरी सतह में जंगल, समुद्र और थोड़े भाग में मरूस्थली होना पाया जाता है। यह जंगल कैसा भी हो, जंगल के सर्वाधिक पेड़–पौधे, लता–गुल अपान वायु (कार्बन डाई आक्साइड) नाम से जाने वाले द्रव्य को अपना खाद्य पदार्थ बनाते हुए अथवा पाचन पदार्थ बनाते हुए प्राण वायु को अर्थात् ऑक्सीजन को प्रदान करता है। जबकि, कोयला और खनिज कोयले से निष्पन्न तेल–पेट्रोलियम को जितने भी यंत्रों में ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं अथवा प्रौद्योगिकी विधि से यंत्र संचालन में प्रयोग किया जाता है, इन सब के विसर्जित ईंधनावशेष में पाई जाने वाली प्राण घातक वायु (कार्बन मोनोआक्साईड) पर्यावरण के लिए अत्यंत घातक मानी जा रही है। इससे पता लगता है, ऐसे खनिज कोयला के मूल में जो बड़े–बड़े जंगल धरती में दबकर कोयले के रूप में आज प्रकट हैं, ऐसे दबने के पहले के जंगल वही द्रव्य अपने में पचा रखा है, इसी को अपना खाद्य पदार्थ बनाकर आकाशचुंबी वृक्ष बने रहे होंगे। ऐसी आकाशचुंबीयता की परिकल्पना को धरती में बनी हुई खनिज कोयले की मोटाई के आधार पर किया जाना स्वाभाविक है। वर्तमान में कहीं–कहीं, कोयले की 150 से 180 मीटर मोटाई की परत बिछी है। इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि कितने बड़े–बड़े वृक्ष रहे होंगे। एक मीटर कोयला होने के लिए कम से कम दस

मीटर वृक्ष की लम्बाई की आवश्यकता पड़ती है, इसकी सघनता **गणितीय** विधि से सभी समझ सकते हैं। इस प्रकार अथक कोयला बनाने के लिए कितने बड़े वृक्षों का जंगल रहा होगा, **गणितीय** विधि से ही इसको निकाला जा सकता है। सामान्य परिकल्पना में समाना ही बहुत मुश्किल है, परिकल्पना में यही लाया जा सकता है कि आकाशचुंबी सघन जंगल रहे होंगे। ऐसे जंगल भूमि के अंदर दबकर सैकड़ों हजारों वर्षों में कोयला हुआ होगा, वही जंगल प्राणघातक वायु (कार्बन मोनो ऑक्साईड) को पचाता रहा होगा, अब वही कार्बन मोनोऑक्साईड को पैदा करता है। अभी पौधे कार्बनडाईऑक्साईड पचाते हैं, ऑक्सीजन को पैदा करते हैं। यह सभी ज्ञानियों–विज्ञानियों को विदित हो चुकी है। इस बात का जिक्र यहाँ इसलिए कर रहे हैं कि इस धरती के लिए इसका प्रयोजन क्या है ? (अध्याय: 7, पेज नंबर: 81)

- भौतिक तुला में छोटी वस्तुओं को तौलने की जब मानव को आवश्यकता हुई, तब, भौतिक तुला के सूक्ष्मतम तौल को निश्चित बिन्दु मानकर उसके दशांश, शतांश के आधार पर विखण्डन विधि को, **गणितीय** विधि से, अपनाया। इसी क्रम में आगे बढ़ कर इलेक्ट्रानिकी, प्रौद्योगिकी विधि से एक–एक वर्ग इंच में लाखों विभाजन, लाखों में वर्ग को विभाजित कर संख्या करण कर लिया। इसके उपयोग को इलेक्ट्रानिक रिकार्डर के रूप में प्रयोग किया ही जा रहा है। आगे–आगे पीढ़ी के लिए प्रयोग करने के लिए ये सब उपलब्ध हैं। लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई को मापने के क्रम में नापने वाला वस्तु किसी न किसी धातु अथवा लकड़ी से बनी रहती है। ऐसी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई अथवा सभी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई व्यापक में समायी हुई है, यह तथ्य हमें विदित है। एक वस्तु दूसरे वस्तु के बीच में जो कुछ मापते हैं, ध्रुव से ध्रुव के बीच में व्यापकता को ही मापे रहते हैं। इन दोनों के बीच दूरी को निश्चित दूरी मान लेते हैं, संख्याकरण कर लेते हैं। स्पष्ट भरोसा रखते हैं। यह ध्यान में लाने का मतलब यही है कि हम कुछ भी मापेंगे दूरी के रूप में, परस्परता के बीच व्यापक वस्तु ही है। इस प्रकार के सभी मापदण्ड के स्वरूप में व्यापक वस्तु को माप कर एक–एक वस्तु माप लिया ऐसा मानते हैं। जैसा लम्बाई, वैसा ही चौड़ाई, वैसा ही ऊँचाई है। जिसमें ही सारी इकाई आती है। जैसा यह धरती व्यापक वस्तु में डूबे, घिरे, भीगे रहने के आधार पर वस्तु के नाम पर वस्तु में ही हर वस्तु को ही मापे रहते हैं। सहअस्तित्व परम सत्य होने के कारण माप का प्रयोजन, प्रक्रिया सफल हो जाता है। इसी क्रम में तौल का कार्य भी सफल हो जाता है। विखण्डन प्रणाली भी मापदण्ड के आधार पर सफल होती है। मानव सौभाग्यशाली होने के आधार पर ही अर्थात् संयमशीलता पूर्वक जीने के आधार पर ही मानव सूक्ष्मतम संकेत से स्थूलतम संकेत तक के लिए, घटाने बढ़ाने के मापदण्डों को करतल गत कर चुके हैं। इस प्रकार मापदण्ड अंततः स्वयं में किसी वस्तु का अथवा गति, दबाव, तरंग, शब्दों का सूक्ष्मतम, स्थूलतम गति, दबाव को चढ़ाने घटाने के रूप में पहचानने की विधियाँ हैं। ये ज्यादातर दूर संचार के लिए अनूकूल हुआ है। (अध्याय: 14, पेज नंबर: 132–133)

- आयाम

हम आयाम संबंधी भाषा प्रयोग करते ही आये हैं। कोई भी एक वस्तु छ: ओर से सीमित होते हुए, तीन आयाम की ही बात करते हैं। इसमें भी मानव की दृष्टि ही प्रधान आधार है। किसी भी वस्तु के छ: ओर मानव के आखों में प्रतिबिम्बित होने के लिए कम से कम तीन प्रकार (ओर) से देखने की आवश्यकता बनी रहती है। इसी को हम तीन आयाम कहते हैं। इकाई अपने स्वरूप में व्यापक वस्तु में भीगी, डूबी, घिरी है। व्यापक वस्तु पारदर्शी होने के आधार पर मानव के दृष्टि पाट में वस्तु का अवस्थिति, परिस्थिति और वस्तुओं का प्रतिबिम्ब चक्षु में होने को दृग बिन्दुओं के रूप में देखा जा रहा है। दृग बिन्दु के रूप में प्रतिबिम्बित होने वाली वस्तुयें अपने संपूर्ण आकार आयतन का 180 अंश तक मानव के चक्षु पर प्रतिबिम्बित हो सकते हैं, इससे ज्यादा नहीं हो पाते हैं। चक्षु पर प्रतिबिम्बित होने वाली सभी वस्तुएं,अपने में से आंशिकता को ही प्रतिबिम्ब रूप में होना, परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक कर सकता है। इसे हर मानव प्रयोग कर सकता है। प्रयोग के लिए विविध वस्तुयें मानव के सम्मुख रखा ही है। इसमें एक मानव, मानव के सम्मुख खड़े होकर होकर देखने पर लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई और बनावट संबंधी, निश्चित अच्छी दूरी से देखने पर, 180 अंश अर्थात् मानव रुपी वस्तु का आधा भाग ही दिखता है। बाकी आधा भाग ओझिल ही रहता है। इस प्रकार आँखों से जो दिखता है, वह अधूरा है। आँखों से देखकर केवल उसके आधार पर जो निर्णय करते हैं, वह भी अधूरा है। इस पर आधारित जितने भी कार्यक्रम हैं, उनका भी अधूरा होना स्वभाविक है। मानव अपने तृप्ति पाने के क्रम में अधूरापन को स्वीकारता नहीं। इस मुद्दे पर पहले ही सामान्य रूप में स्पष्ट किया जा चुका है कि **गणित** आँखों से अधिक, समझ से कम है। अर्थात् **गणित** भाषा से जो बोध होता है, वह आँखों से अधिक होता है, जबकि आँखों के आधार पर भी बोध होने की बात समझ में आता है, अथवा चित्रित होने की बात आती है। चित्र भी नजर के आधार पर बना रहता है, वह भी अधूरा रहता है। चित्र में आकार आयतन का 180 अंश ही दिख पाता है। नजरों में भी 180 अंश ही समा पाता है। जबकि **गणितीय** भाषा से जो बोध होता है, वह आकार, आयतन का पूरा बोध कराता है। आँखों में घन का कोई प्रतिबिंबन होता ही नहीं समझ में आता है। इसके आगे यह भी स्पष्ट किया है कि **गणितीय** विधि से जो कुछ भी हमको समझ में आता है, उससे अधिक गुणात्मक और कारण भाषा से समझ में आता है। क्योंकि हर वस्तु की संपूर्णता रूप, गुण, स्वभाव, धर्म का समुच्चय है। रूप, गुण, स्वभाव, धर्म संबंधी व्याख्या पहले किया जा चुका है। मानव में, से, के लिए हर वस्तु का बोध रूप, गुण, स्वभाव, धर्म के साथ ही संपूर्ण बोध और तृप्ति का कारण बन पाता है। इनमें से कोई भाग ओझिल रहने से मानव को तृप्ति होना संभव नहीं है। सम्पूर्ण समझ के आधार पर लिया गया निर्णय और कार्य व्यवहार समाधान कारक होगा। यह बात समझ में आती है। समस्या को मानव स्वीकारता नहीं। समाधान को स्वीकारता है। हरदिशा, दिशाबन, कोण, आयाम में संपूर्णता के आधार पर लिये गये निर्णयों के साथ समाधान निंगमित होता है। इसे भले प्रकार से हर मानव जाँच सकता है।

उक्त प्रकार से आँखों के आधार पर निर्भर होकर जितने भी प्रयोग, निर्णय मानव जाति ने किया है, वह सब परिणामत: अनगिनत समस्या का स्वरूप हो चुका है। यंत्र प्रमाण, आँखों से अधिक हो नहीं सकता। यही सबसे बड़ा प्रमाण है। विज्ञान की चेष्टा आँख को प्रयोग करना, आँखों को और ज्यादा सूक्ष्मतम रूप में देखने के लिए औजारों को बना लेना, कर्माभ्यास में आ चुका है। अर्थात् पावरफुल लैंस, लाखों–करोड़ों गुणा बड़ा दिखाने वाला, अरबों–खरबों गुणा दिखाने के लिए इलेक्ट्रानिक लैंस भी प्रयोग में आ चुकी है। इन सबके उपरान्त भी आँख में जो होता है, आँख को अरबों गुणा कारगर बना ले, अर्थ उतना ही निकलता है। इसीलिए ज्ञान, विज्ञान, विवेक संयुक्त विधि से सहअस्तित्ववादी नजरिया से संपूर्ण को पहचानना कारण, गुण, **गणितात्मक** भाषा से संप्रेषित हो पाना, बोध हो पाना, फलस्वरूप मानवाकाँक्षा, जीवनाकाँक्षा रुपी लक्ष्य को पाना ही एक मात्र आवश्यकता है। इस पर तुलने के लिए दिशा और दृष्टि बहुत आवश्यकीय क्रिया है। दिशा को हम इस प्रकार से समझे–भौगोलिक विधियों से दिशा को हम जानते ही हैं, खगोलीय विधि से भी दिशा को जानते हैं। अब इसके साथ और दो भाग जो ओझिल हैं– विकास की दिशा और जागृति के लिए दिशा की पहचान होने की आवश्यकता है। विकास के लिए दिशा रासायनिक, भौतिक और जीव संसार के साथ पूरकता और उपयोगिता विधि से अपने कार्य व्यवहार अर्थात् मानव अपने कार्य व्यवहार को निर्णीत करना ही और आचरण में लाना ही, फल परिणाम को पाना ही, विकास की दिशा का मतलब है। जागृति दिशा का तात्पर्य भी यही है कि समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी पूर्वक मानव में संगीत को, सामरस्यता को प्रमाणित करना, जीवनाकाँक्षा और मानवाकाँक्षा को प्रमाणित करना है। इन दोनों मुद्दों पर मानव को सफल होने की आवश्यकता है। इसके लिए सहअस्तित्ववादी नजरिया ही नित्य समाधान है।

मानव संतुष्टि की नजरिये से रूप, गुण, स्वभाव, धर्म रुपी आयामों को स्पष्टता से हृदयंगम करने के उपरान्त ही हर मानव विकास और जागृति के संदर्भ में समाधानात्मक निर्णय संपन्न होना, फलस्वरूप जागृति और विकास की दिशा में सार्थक हो पाना होता है। यही सारांश है। **(अध्याय: 14, पेज नंबर: 139–141)**

सन्दर्भ :मानव अभ्यास दर्शन

(संस्करण: द्वितीय, मुद्रण: 2010)

- परिचय ज्ञान, व्यवहार एवं आचरणपूर्वक सिद्धि के लिए की गई प्रक्रिया ही परिमाण–प्रक्रिया है। मानव में पूर्णता केवल क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता है। परिणाम–निर्णय–प्रक्रिया में कारण, गुण, **गणित** ही आद्यान्त आधार है। यही निर्णायक तथ्यत्रय है। कारण सहित घटनाएं, गुण सहित प्रक्रियाएं एवं मात्रा की गणनाएं प्रसिद्ध हैं। **(अध्याय: 6, पेज नंबर: 88)**
- अनुभव योग्य क्षमता ही पांडित्य का प्रधान लक्षण है। यही मूल्यों सहित विशिष्टता को प्रकट करती है। ऐसी क्षमता जागृति के सहज परम्परा में विधिवत् नि:सृत वास्तविकता है। प्रबुद्धता ही प्रमाण को प्रस्तुत करती है या प्रमाण प्रबुद्धता की निष्पत्ति है। संपूर्ण मूल्य अनुभव से प्रमाणित होते हैं। प्रत्येक मूल्यवत्ता स्वयं में स्वभाव है। यही स्थिति या स्थितिवत्ता है। स्थिति ही प्रकटन है। प्रकटन ही दृश्य है। दर्शन–क्षमता के अनुसार दृश्य का दर्शन होना प्रसिद्ध है। यही मूल्याँकन–प्रक्रिया है। दर्शन–क्षमता ही मूल्याँकन–प्रक्रिया का मूल तत्व है। यही स्थितिवत्ता की व्याख्या एवं विश्लेषण, प्रयोजन की अपेक्षा में होता है। मानव के लिए अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष से अधिक प्रयोजन नहीं है। इन प्रयोजनों का वरीयताक्रम मोक्ष, धर्म, अर्थ एवं काम है। इसी क्रम से सिद्धि, प्रतिबद्धता, प्रतीति एवं भास है। सिद्धि केवल सुख है, जिसकी चार स्थितियाँ प्रसिद्ध हैं जो सुख, शांति, संतोष एवं आनंद है। इन्हीं के प्रति प्रतिबद्धता, प्रतीति एवं भास होना मानव में प्रसिद्ध है। अनुभूति ही भ्रममुक्ति है। यह अतिमानवीयता पूर्ण जीवन में चरितार्थ होता है। मानवीयतापूर्ण जीवन में धर्म के प्रति प्रतिबद्धता होती है। यही समाज गठन का मूल तत्व है। यही स्वधर्मीयता का अनुभव करने एवं प्रसारण करने के लिए बाध्यता है। यही बाध्यता आचरण एवं व्यवहारपूर्वक संस्कृति व सभ्यता को व्यक्त करती है। प्रतिबद्धता पूर्वक ही मूल्यानुभूति होना पाया जाता है। स्थितिवत्ता का पूर्ण विश्लेषण ही मूल्यानुभूति है। मूल्यानुभूति ही निर्वाह क्षमता है। यह क्षमता ही प्रेरणा है। यही प्रेरणा व्यंजनोत्पादी प्रक्रिया है। इसके फलस्वरूप कार्यक्रम निष्पन्न होता है। नीतित्रय से अधिक कार्यक्रम नहीं है। इसके विधिवत् ज्ञानवश मानव, मानव के साथ व्यवहार करने के लिए तत्पर होता है। साथ ही व्यवहार गति में आवश्यकीय एवं अनिवार्य साधनों से संपन्न होने के लिए बाध्य होता है। फलत: शिष्ट मूल्य का प्रयोजन व वस्तु मूल्य का उपयोग सिद्ध होता है। यही समग्र कार्यक्रम का मूल कारण है। अनुभव में क्रम का विश्लेषण होता है। कारण–गुण–**गणित** से निर्णय होता है। उपलब्धि से ही क्रम एवं कार्यक्रम की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। क्रम ही विश्लेषण एवं उपलब्धि ही अनुभूति है। मूल्यत्रय से अधिक उपलब्धि नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव में विशिष्टता केवल अनुभव योग्य क्षमता ही है। यही गुणात्मक परिवर्तन का लक्ष्य एवं उपलब्धि है। लक्ष्य एवं उपलब्धि के मध्य में कार्यक्रम समाया है। प्रत्येक उपलब्धि कार्यक्रम पूर्वक ही उपलब्ध होती है। यह गुरू मूल्यन अर्थात् गुणात्मक परिवर्तन प्रक्रिया से सिद्ध होता है। यही प्रत्येक मानव का अभीष्ट है। प्रबुद्धता पर्यन्त विचार, व्यवहार, उत्पादन,

उपयोग, सदुपयोग एवं प्रयोजनशीलता प्रक्रिया में गुणात्मक परिवर्तन भावी है। इसी कारणवश संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन एवं परंपरा अवश्यंभावी है। इन सभी का गुणात्मक परिवर्तन ही पाँचों स्थितियों में गुणात्मक परिवर्तन है। इन सबकी गुरू मूल्यनीयता का अंततोगत्वा अनुभव योग्य क्षमता में समाहित रहता है। यही सभी स्तर पर प्रामाणिक जीवन का आधार है। इसी आधार पर सार्वभौमिकता सिद्ध होती है। प्रमाण का विरोध स्वीकार्य नहीं है। प्रमाण विफल नहीं होता है। **(अध्याय: 11, पेज नंबर: 143)**

- तथ्य त्रय : परिणाम, निर्णय प्रक्रिया के कारण गुण, **गणित** ही आद्यान्त आधार है। यही निर्णायक तथ्य त्रय है। **(पेज नंबर:181)**

सन्दर्भ :मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2016)

Not found

सन्दर्भ: समाधानात्मक भौतिकवाद

(संस्करण:2009)

- अस्तित्व, पुष्टि, आशा और अनुभूति सुख, शांति, संतोष, आनंद सहज अर्थ में धर्म है।

इस प्रकार जड़ प्रकृति में रूप और गुण, **गणित** एवं गुण के द्वारा समझ आता हैं। स्वभाव व धर्म अस्तित्व में गुण और कारण द्वारा समझ में आते है। धर्म अस्तित्व में ही नित्य वैभवित रहता है। अस्तु, अस्तित्व में मात्रा की समझ के लिए केवल **गणित** की भाषा पर्याप्त सिद्ध नहीं हुई क्योंकि ''**गणित** आंखों से अधिक एवं समझ से कम होता है।" इसीलिए चैतन्य–प्रकृति **गणितीय** भाषा से व्याख्यायित नहीं हो पाती। इसीलिए हम गुण और कारणात्मक भाषा को भी सीखने के लिए बाध्य है। गुण, घटनाओं के रूप में परस्पर वर्तमान होता हुआ देखा जाता है। जड़ प्रकृति में समविषमात्मक प्रभाव परस्पर इकाईयों में पड़ता है और स्वयं के समविषमात्क आवेशों को सामान्य बनाने के क्रम में मध्यस्थ शक्ति को कार्यरत होना देखा जाता है। कार्य ऊर्जा बढऩा ही सम–विषम आवेश है इसी आवेश को सामान्य बनाने के लिए छिपी हुई ऊर्जा प्रभावशील रहती हैं, जबकि चैतन्य–प्रकृति में समाधान और प्रमाणिकता के रूप में मध्यस्थ क्रिया प्रभावशील होती है। समाधान और प्रमाणिकता ही मानव परम्परा के रूप में स्वीकार है। इससे पता चलता है कि चैतन्य–प्रकृति में ही मध्यस्थ क्रिया की पूर्ण प्रभावशाली परम्परा होने की व्यवस्था है। इसीलिए विकास होता है। स्वभाव और धर्म को कारण–कार्य एवं कार्य–कारण पद्धति से समझने की व्यवस्था हैं। स्वभाव प्रत्येक इकाई में अर्थात् जड़–चैतन्यात्मक इकाई में मूल्यों के रूप में वर्तता है। मूल्य प्रत्येक इकाई में स्थिर होता हैं। धर्म अविभाज्य होता हैं। इसी कारणवश मानव में समझने की व्यवस्था है। किसी घटना के मूल के लिए सब आवश्यकीय सघन कारक तत्वों को स्पष्ट कर देना ही गुणात्मक भाषा हुई, जैसे:–

अव्यवस्था = दर्द = समस्या = गुणात्मक भाषा।

अव्यवस्था के कारक तत्व की समझ = घटना का अध्ययन

समस्या का कारण = कारणात्मक भाषा।

इसी तरह,

व्यवस्था की समझ = सुख = समाधान = गुणात्मक भाषा।

व्यवस्था के कारक तत्व की समझ = घटना का अवयव =

नियतिक्रम = समाधान का कारक = कारणात्मक भाषा।

इस गवाही के साथ ही विकास का अभीष्ट स्पष्ट हो जाता है। (अध्याय: 5, पेज नंबर: 83–84)

- भ्रम:– रासायनिक, भौतिक वस्तुएँ ठोस, तरल और विरल रूपों में विद्यमान हैं। विरल अवस्था में भी प्रत्येक अणु अथवा सम्मिलित एक से अधिक अणु ''एक" के रूप में ख्यात हैं। इसी भांति परमाणु में निहित अंशों में, उन अंशों को यदि विखण्डित किया जाये तो प्रत्येक खंड ''एक" ही कहलाएगा। यह क्रिया व्यवहार रूप में तो होती नहीं तथापि मानव की कल्पना सहज वैभव को **गणित** के रूप में पहचाना गया है। **गणित** विधि से मूलत: मानव की कल्पनाशीलता विधि से, विखंडन की परिकल्पना है। इस विधि से भी, परमाणु में निहित एक अंश को, अनेकानेक खंडों में विभक्त करने के पश्चात भी प्रत्येक खंड ''एक" ही कहलाता है। इस प्रकार किसी का तिरोभाव नहीं हो सकता। इस सत्य के खिलाफ मानव की कल्पनाशीलता प्रादुर्भाव और तिरोभाव के चक्कर में पड़कर अथवा भ्रम में ग्रसित होकर परेशान ही हुई है। अस्तित्व में कोई ऐसी चीज नहीं है, जो पैदा होती हो अथवा जो हैं वह मिट जाता हो; यह दोनों क्रियाएँ अस्तित्व में नहीं हैं। इसी भ्रमपूर्ण कल्पनावश मानव परेशान रहा हैं। इससे यह भी समझ में आता है कि ''जो था, वही होता है; जैसे अस्तित्व में पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था थी"। इसकी गवाही इस धरती पर स्पष्ट हैं। इसका दृष्टा मानव ही हैं। इस ज्वलंत उदाहरण से ''जो था वही होता है, और जो था नहीं वह होता नहीं।"

  इस मुद्दे पर बुद्धिजीवी अपने विवेक का प्रयोग कर सकते हैं। इस धरती के पहले किस धरती पर ये चारों अवस्थायें कहाँ थी, यह पूछ सकते हैं। इसमें दो दोष ऐसा आता है – देश और काल। अस्तित्व सहज वैभव में अर्थात् अस्तित्व सहज नित्य वर्तमान रूपी वैभव में देश और काल हस्तक्षेप नहीं कर पाते। (**अध्याय: 6, पेज नंबर:** 100)

- अस्तित्व में चारों अवस्थाएँ इस धरती पर होना प्रमाणित हैं। यह धरती एक सौर व्यूह का अगंभूत (अंग के रूप में) कार्य करती हुई हैं यह स्पष्ट हो चुका है। ऐसे अनंत सौर व्यूह होने की कल्पना मानव में होती हैं, इस धरती पर जितने भी मानव हैं वे सब धरती पर जागृति सहज प्रमाणों को प्रमाणित करें, इसकी परम आवश्यकता हैं। क्योंकि सभी समस्याएँ मानव में, मानव से, मानव के लिए की हुई हैं। इसलिए सभी आयामों, कोणों, दिशाओं, परिप्रेक्ष्यों में समाधान प्रस्तुत करना भी परम आवश्यकता हैं। इसका आधार यही हैं कि मानव को समस्याएँ स्वीकृत नहीं हैं। अपितु समाधान सहज ही स्वीकार्य होते हैं। समाधान का सम्पूर्ण प्रयोजन मानव इकाई के अंतर–संबंधों और अस्तित्व में परस्पर सह–अस्तित्व सहज वर्तमान में, पहचाना जाता हैं। अर्थात् पूर्णता क्रम, पूर्णता और उसकी निरंतरता सहज सूत्रों, व्याख्याओं जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के प्रमाणों से संप्रेषित होता है। यही मानव भाषा का अर्थ है। इस अर्थ को संप्रेषित करने के लिए कारण, गुण, **गणितात्मक** विधि से, विवेक और विज्ञान सम्मत तर्क प्रणाली को अपनाना होता है। इसी विधि से पूर्णता की अवधारणा, उसकी अक्षुण्णता सहज रूप में ही मानव परंपरा में प्रवाहित होती हैं। मानव परंपरा अर्थात् मानवीयता पूर्ण शिक्षा–संस्कार, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, मानवीय आचरण संहिता रूपी संविधान इसकी प्रतीक्षा सबको हैं। इसका कारण एक ही हैं, इसका नित्य

सर्वशुभ, मानव में ही स्वीकृत रहता हैं। इसी सत्यतावश मानव में नित्य स्वीकारा हुआ प्रमाण इच्छा के रूप में, शुभ विचार के रूप में, शुभ कल्पना के रूप में प्रस्तुत कर लेना स्वाभाविक हैं। उत्पादन में व्यवहार में आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रमाण में होने वाली सहज संप्रेषणा ही मानवीय आचरण, मानवीय व्यवहार और मानवीय व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होती हैं। इसके लिए मानवीय शिक्षा–संस्कार परपंरा के रूप में प्राप्त होना भी, सहज हैं। यही प्रमाण परंपरा का तात्पर्य और अपेक्षा हैं। मानव सहज जागृति ही मानवीयतापूर्ण व्यवस्था का आधार है। उसकी निरतंरता का स्रोत हैं। सम्पूर्ण मानव का जागृति क्रम जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने का सहज क्रम है। जानने, मानने की संपूर्ण वस्तु अस्तित्व ही हैं। अस्तित्व में मानव अविभाज्य हैं। ''अस्तित्व में परमाणु में विकास" सहज विधि से विद्यमान जीवन प्रतिष्ठा और अस्तित्व में रासायनिक–भौतिक रचना रूपी शरीर के संयुक्त रूप में मानव परिभाषित हैं और व्याख्यायित हैं। अस्तित्व में संपूर्ण वस्तु अपने–अपने स्वरूप में परिभाषित है और आचरण पूर्वक वैभव के रूप में व्याख्यायित है। जैसे सत्ता अपनी व्यापकता अर्थात् सर्वत्र एक सा विद्यमान स्वरूप में परिभाषित है और पारदर्शी, पारगामीयता के रूप में व्याख्यायित हैं। सत्ता में संपृक्त प्रकृति अनंत इकाईयों के रूप में परिभाषित है। श्रम, गति, परिणाम सहित क्रियाओं के रूप में व्याख्यायित है। **(अध्याय: 9 (11), पेज नंबर: 346–348)**

सन्दर्भ : व्यवहारात्मक जनवाद

(संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

- भाषा में जितने भी शब्दो को प्रयोजित करते है कारणवादी, गुणवादी, **गणितवादी** रूप में वर्गीकृत होता है। इसके मूल में रूप गुण स्वभाव धर्म का नाम समाहित रहता है। मानव मानव की परस्परता में चर्चा संवाद करता है। जिसे सामान्य भाषा में बातचीत कहते है। संवाद के बिना आदमी की अभिव्यक्ति अधूरी है। अतएव मानव हर अवस्था से अपने और आगे अवस्था के लिए संवाद आवश्यक है। जागृतिपूर्ण होने के उपरान्त भी उसकी निरन्तरता के लिए संवाद बना ही रहेगा। (अध्याय: 8, पेज नंबर: 131)

सन्दर्भ : अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण:2009)

- ज्ञानावस्था सहज मानव में, से, के लिये अनुभव प्रामाणिकता के रूप में सर्वोपरि प्रमाण है । नियम, न्याय, धर्म, सत्य यह अनुभवमूलक विधि से ही प्रमाणित होना देखा गया । अनुभव का मूल रूप (स्थिर बिन्दु) जानने–मानने का तृप्ति बिन्दु ही है । जानने–मानने का जो मौलिक स्थिति कारण–गुण–**गणित** है वह केवल मानव में ही होना पाया जाता है । यह कल्पनाशीलता और जागृति की सम्भावना के योगफल में गतित होना पाया जाता है । इसी प्रकार नियम, न्याय, धर्म, सत्य भी अध्ययन विधि से जानना; मानना बन जाता है । फलस्वरूप प्रामाणिक होने के लिये पहचानना, निर्वाह करना सम्भावना निर्मित होती है । **(अध्याय: 2, पेज नंबर: 15)**
- सत्ता में संपृक्त जड़–चैतन्य प्रकृति में व्यवस्था के मूल तत्व के रूप में परमाणु को देखा जाता है । जबकि अस्तित्व ही सम्पूर्ण अभिव्यक्ति या प्रकटन है । यहाँ मूलत: यह तथ्य ध्यान में रहना आवश्यक है कि सत्ता में संपृक्त प्रकृति अविभाज्य है । यह अविभाज्यता निरंतर है । इसीलिये सत्ता में संपृक्त प्रकृति नित्य वर्तमान ही है । अस्तित्व स्वयं भाग–विभाग नहीं होता है इसीलिये अस्तित्व अखंड अक्षत होना समझ में आता है । प्रमुख अनुभव यही है कि सत्ता में संपृक्त प्रकृति अनन्त रूप में दिखाई पड़ती है ये सब भाग–विभाग के रूप में ही सत्ता में दिखाई पड़ती हैं । इसे सटीक इस प्रकार देखा गया है व्यवस्था का भाग–विभाग होता नहीं । अस्तित्व ही व्यवस्था का स्वरूप है ।

  आदिकाल से अभी तक के अथक प्रयास से भाग–विभाग को लेकर जितने भी अनुसंधान, प्रयोग और अनुमान किये हैं उन सब का समीक्षा इतना ही है कि किसी एक वस्तु को विखण्डन पूर्वक तिरोभाव किया नहीं जा सकता। यह **गणित** विधि से भी सुस्पष्ट है । **गणितीय** विधि से ही विखण्डन अनेक होने की क्रिया है । **(अध्याय: 3, पेज नंबर: 56–57)**

- विज्ञान और भोग, अतिभोग, संग्रह, सुविधा मानसिकता में आँखों में देखा हुआ को सत्य मान लेना और मनाता हुआ परंपरा को देखा गया है। यह अथ से इति तक भ्रम और गलत है क्योंकि **गणित** आँखों से अधिक और समझ से कम होता है। समझ ही प्रमाणपूर्वक परंपरा में लोकव्यापीकरण होने की वस्तु है और अनुभव ही व्यवहार में न्याय, धर्म और सत्य सहज विधि से प्रमाणित होती है । यह लोकव्यापीकरण होने के लिये परंपरा को जागृत रहना आवश्यक है ।

  आँखों से जो कुछ भी दिखता है वह किसी वस्तु के रूप (आकार, आयतन, घन) में से आंशिक भाग दिखाई पड़ता है । रूप का भी सम्पूर्ण भाग आँखों में आता नहीं । जबकि हर वस्तु, रूप, गुण, स्वभाव, धर्म के रूप में अविभाज्य वर्तमान है । यह जागृतिपूर्ण शिक्षा विधि से लोकव्यापीकरण होता है । **(अध्याय: 4, पेज नंबर: 114)**

- गठनशील से गठनपूर्ण परमाणु बनना ही संक्रमण है । संक्रमण का स्वरूप और कार्य निश्चित बिंदु के पहले और बाद की मध्य रेखा ही है जिसकी लम्बाई–चौड़ाई–मोटाई कुछ भी नहीं रहती है । इस संक्रमण गामी परिणाम को केवल मानव अपने दृष्टा पद प्रतिष्ठा महिमावश समझना परम सहज और परम आवश्यक है । यह संक्रमण के अनन्तर जीवन सहज कार्य प्रतिष्ठा को किसी भी यंत्र से या मानव आँखों से देखना सम्भव नहीं है क्योंकि आँखों से **गणितीय** भाषा अधिक है अर्थात् आँखों से जितना इंगित हो पाता है उससे अधिक **गणितीय** भाषा से इंगित होना देखा गया है। **गणितीय** भाषा से अधिक गुणात्मक भाषाओं से परस्पर मानव में इंगित होना देखा गया है और गुणात्मक भाषा से तथा **गणितात्मक** भाषा से जितना इंगित हुआ है उससे अधिक और सम्पूर्णता कारणात्मक भाषा से इंगित होना पाया गया है । इंगित होने का तात्पर्य, प्रयोजन सहित वस्तु स्वरूप सर्वस्व को जानना–मानना और पहचानने से है इसलिए मानव भाषा कारण–गुण–**गणितात्मक** है।

  रूप सहज अस्तित्व में, से आंशिक भाग आँखों से इंगित होता है । **गणित** के द्वारा सम्पूर्ण रूप और आंशिक गुण इंगित होता है, गुण का तात्पर्य प्रभाव सहित गति है । सम्पूर्ण गुण और स्वभाव गुणात्मक भाषा से इंगित होता है। कारणात्मक भाषा विधि से स्वभाव–धर्म इंगित होता है और 'अस्तित्व समग्र' इंगित होता है। इस विधि से मानव भाषा अपने आप सुस्पष्ट है। (अध्याय: 5, पेज नंबर: 128–129)

- वर्णित ऐतिहासिक विफलताएँ अग्रिम अनुसंधान के लिये आधार होना स्वाभाविक है। इस क्रम में इस तथ्य को अनुभव किया जा चुका है कि आँखों से अधिक कल्पनाशीलताएँ हर मानव में विद्यमान है । **गणित** भी कल्पनाशीलता का ही प्रकाशन है । संख्या के रूप में हर घटना या रूप और गुणों को बताने के लिये प्रयत्न हुआ । गुण ही गति के रूप में होना देखा गया है । **गणितीय** क्रियाकलाप भी मानव भाषा में गण्य होना पाया जाता है। सर्व मानव में गणना कार्य प्रकट होते ही आया है । ऐसे गणना कार्य को विधिवत् प्रयोग करने के आधार पर रूप सम्बन्धी तीनों आयाम आकार, आयतन, घन को समझने–समझाने का कार्य सम्पन्न होता है । इसी के साथ–साथ गति सम्बन्धी संप्रेषणा भी गणना विधि से लाने का प्रयास हुआ। मध्यस्थ गति **गणितीय** भाषा में संप्रेषित नहीं हो पायी है। सम–विषमात्मक गतियों को दूरी बढ़ने–दूरी घटने, दबाव और प्रवाह बढ़ने–घटने के साथ परिणामों का आंकलन सहित अध्ययन करने का प्रयास विविध प्रकार से किया गया है । ये दोनों सम–विषम गतियाँ आवेश के रूप में ही गण्य होते हैं जबकि हर वस्तु, हर इकाई, उसके मूल में जो परमाणु है वह अपने स्वभाव गति प्रतिष्ठा में ही उनके त्व सहित व्यवस्था होना पाया जाता है । जो कुछ भी अस्तित्व में त्व सहित व्यवस्था के रूप में व्यक्त है वह सब मध्यस्थ गति के अनुरूप ही कार्यरत होना देखा गया । मानव में इसका कार्य रूप, कार्य प्रतिष्ठा जागृति मूलक विधि से ही स्पष्ट होना देखा गया है। इसका प्रमाण न्याय, धर्म, सत्य मूलक अभिव्यक्ति के रूप में ही प्रमाणित होता है । इनमें से कम से कम न्यायपूर्ण अभिव्यक्ति क्रम में ही मानव त्व को प्रकाशित कर पाता है । न्याय साक्षात्कार के उपरान्त स्वाभाविक रूप में धर्म और सत्य में जागृत होता है अर्थात् प्रमाणित होता है ।

इसलिये मानवीयतापूर्ण मानव चेतना पूर्ण पद में संक्रमित होना अति अनिवार्य है । इसी आवश्यकता के आधार पर शिक्षा में प्रावधानित वस्तु जागृति पूर्ण रहना आवश्यक है। यही परंपरा का परिवर्तन कार्य है । शिक्षापूर्वक ही सर्वमानव के जागृत होने का मार्ग प्रशस्त होता है। अतएव मध्यस्थ गति मानव का स्वभाव गति के रूप में मानवीयता को प्रमाणित करने के रूप में ही संभव होता है । फलस्वरूप समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रामाणिकता और स्वायत्तता के साथ दिव्य मानव प्रतिष्ठा शिक्षा–कार्य और प्रमाण वैभवित रहता है । यही मानव परंपरा का सर्वांग सुन्दर वैभव है । इसे अनुभव मूलक विधि से ही सम्पन्न करना संभव है । यही दृष्टा पद परम्परा का भी प्रमाण है । **(अध्याय: 6, पेज नंबर: 194)**

- मानव परंपरा में जीवन अपने ही कल्पनाशीलता – कर्म स्वतंत्रता की ओर प्रवृत्त होते हुए जागृति की ओर बाध्य होता गया । जागृति जीवन सहज स्वीकृति रहता ही है । जागृति अर्थात् जानना–मानना–पहचानना–निर्वाह करना क्रियाकलाप ही है । यह प्रमाणित करने के लिये, ऐसे प्रामाणिकता को पाने के लिये, सर्वमानव इच्छुक रहा है । इन्हीं अस्तित्व सहज जीवन सहज आधारों पर समुदायगत संकीर्णताओं और वैज्ञानिक कर्मगत धरती के साथ किये जाने वाले अनिष्ट क्रियाकलाप के प्रति अस्वीकृति होते ही आया । जागृति के लिये नित्य विद्यमान अस्तित्व, जीवन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही प्रधान बिन्दु रहा अथवा सम्पूर्ण बिन्दु रहा । भले प्रकार से देखने – परखने के उपरान्त यह पता चला अस्तित्व में व्यापक वस्तु है, इसे परमात्मा के नाम से इंगित कर सकते हैं । यह भाग–विभाग होता नहीं । यह सम्पूर्ण प्रकृति में पारगामी है । परस्पर प्रकृति के लिये पारदर्शी है । इन प्रमाणों को हर व्यक्ति समझ सकता है । सत्ता में हर व्यक्ति डूबे, घिरे हुए स्थिति को देखता ही है। हरेक – एक इसी प्रकार दिखती है । पारगामी होने का बिन्दु तभी पता चलता है, वस्तु में निहित ऊर्जा सम्पन्नता को, बल सम्पन्नता के रूप में देखा जाता है । इसे इस प्रकार देख सकते हैं कि प्रत्येक वस्तु मूलतः परमाणु अंश, परमाणु अंशों से रचित परमाणु, अनेक परमाणु से रचित अणु, अनेक अणुओं से रचित रचनाएँ दिखते ही हैं । परमाणु अंश, परमाणु के रूप में गठित होने के क्रम में इन अंशों के परस्परता में निश्चित दूरी होना पाया जाता है । ये दूरियाँ स्वयं व्यापक वस्तु ही है । ऐसे परमाणु अंशों को भी अनेकानेक भाग–विभाग में कम से कम **गणितीय** विधि से विभाजन कल्पना कर ही सकते हैं । कितने भी विभाजन करें एक की संख्या (अंश) बढ़ती जायेगी, न कि किसी एक का नाश होगा । इस सहज क्रिया से यह पता चलता है, एक का वैभव नित्य है । एक के सभी ओर ऊर्जा (व्यापक) दिखाई पड़ती है । इस विधि से सत्ता रूपी ऊर्जा पारगामी है । यह स्वाभाविक ही स्पष्ट हो जाती है । यह बौद्धिक प्रक्रिया इसलिये आवश्यक है कि जड़–चैतन्य रूपी अनन्त प्रकृति में सत्ता पारगामी है और यही पारगामीयता सहज महिमावश हर वस्तुएँ अथवा प्रत्येक एक सत्ता में भीगा हुआ होना पाया जाता है । इस मुद्दे को पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है। अस्तु, अस्तित्व में व्यापक सत्ता विद्यमान है, आप हमारे आँखों में देखने को मिलती है, इसका भाग–विभाग होता नहीं है और जीवों का उत्पत्ति अव्यक्त विधि से होता नहीं है । अस्तित्व में परमाणु ही जीवन पद में गठन पूर्णता पूर्वक वैभवित है । जीने की आशा का उद्गमन जीवन में, से, के लिये होता ही रहता है । यही ऊर्जा आशा रूप में प्रगट है

क्योंकि जीवन अक्षय बल – अक्षय शक्ति सम्पन्न है, इस बात को पहले स्पष्ट किया जा चुका है । इसी के साथ पहले यह भी स्पष्ट किया है कि गठनपूर्ण परमाणु पर रासायनिक–भौतिक दबाव–प्रभाव प्रभावशील होता नहीं है । रासायनिक–भौतिक वस्तुओं का दबाव–प्रभाव, इन्हीं के आपस में प्रभावशील होना देखा गया है। यह निष्कर्ष स्वाभाविक रूप में धरती, वायु, जल को नियंत्रित रखने के लिये सद्बुद्धिदायी सूत्र है । इसी के साथ वन, खनिज का संतुलन, उसका उपयोग प्रयोजन को संतुलित रखने का प्रतिष्ठा, अधिकार (जिम्मेदारी) स्वाभाविक रूप में मानव से निर्गमित होता है और प्रमाणित होता है । यह सब जागृति और उसकी प्रभावशीलन का क्रम और वैभव है । इस प्रकार अस्तित्व सहज रूप में जीवन एक गठनपूर्ण परमाणु होना, जिसमें ही मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, आत्मा रूपी जीवन बल, आशा, विचार, इच्छा, ऋतंभरा और प्रमाण रूपी जीवन शक्तियाँ प्रमाणित होते हुए देखा गया है । अध्यात्म का परिभाषा सभी आत्माओं का आधार रूप में इंगित होना पाया जाता है क्योंकि सत्ता पारगामी है । (अध्याय: 6, पेज नंबर: 241–243)

सन्दर्भ : व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(संस्करण : 2009)

- **मानव में, से, के लिये यह धरती एक अखण्ड है। मानव भाषा कारण, गुण, गणित के अर्थ में समान है।**

शून्याकर्षण की स्थिति में स्वयं स्फूर्त गति सहित एक सौरव्यूह और अनेक सौरव्यूह सहज व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करता हुआ यह सौभाग्यमयी धरती है। इस धरती में कहीं भी भाग विभाग नहीं है। सभी भाग–विभाग मानव के द्वारा बनायी गयी सीमाएँ है। यह धरती अपने में ठोस, तरल, वायु सहित रासायनिक–भौतिक रचना–विरचना सहित चारों अवस्था के धारक–वाहक के रूप में प्रतिष्ठित है। हम इस सौर व्यूह में यही एक धरती को सौभाग्य सम्पन्न रूप में देखते हैं अर्थात् चारों अवस्था से सम्पन्न धरती को देख पाते हैं और कहीं ऐसा सौभाग्य सम्पन्न धरती नहीं, ऐसा नहीं है। ऐसा सौभाग्य सम्पन्न धरती हो उसमें से यह भी एक है। अन्य धरती के सम्बन्ध में हमें दौड़ने की आवश्यकता नहीं है, यह धरती में आवश्यकीय मानव जागृति, सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज रूपी परम्परा को प्रमाणित करना ही अभी इस धरती का मानव सहज कल्याण मार्ग है। इसका कारण यही है यह धरती को मानवकृत परेशानियों से दूर करने, और प्रकृति सहज नियमों को, जागृति सहज नियमों को नित्य निरन्तर पालन, आचरण और व्यवहार करता हुआ मानव मानस आज प्रमाणित होने की आवश्यकता है। यही सर्व प्राथमिक आवश्यकता है। इसके लिये धरती की अखण्डता और एकता को पहचानना एक आवश्यकता है। यह धरती भी समग्र व्यवस्था में अविभाज्य है। अतएव मानव अपने जीवन सहज जागृति परम्परा रूप में एकता, अखण्डता और सार्वभौमता को पहचानने के योग्य इकाई है। इसमें से एकता अखण्डता का मूर्त रूप यह धरती भी है। इस धरती को स्वस्थ रूप में बनाये रखना तभी संभव है जब मानव परम्परा जागृत हो जाए। भ्रम पर्यन्त अस्वस्थता की कहानी बन चुकी है।

मानव भाषा अपने स्वरूप में कारण, गुण और **गणित** है। इसे किसी लिपि पूर्वक संप्रेषित करें, इसका फलन एक ही होता है अर्थात् मानव की समझदारी, उसकी परंपरा के लिये भाषा प्रयुक्त होता है। कारण, गुण, **गणित** को किसी भी लिपि, किसी भी भाषा में संप्रेषित करने की स्थिति में उसकी सत्यता एक ही प्रकार से फलवती होती है। इस यथार्थ को समझने के उपरान्त सम्पूर्ण मानव में समझदारी की समानता का विश्वास होना अनिवार्य है। सर्वशुभ घटित होने के क्रम में समझदारी का यह भी एक आयाम है। इस विधि से सम्पूर्ण विवाद, अनर्थ प्रवृत्ति, और रहस्यता से मुक्त मानव परम्परा स्थापित होने के उपरान्त अपने–आप यह सब समाधान में परिणित हो जाते हैं। इसीलिये सर्वतोमुखी समाधान मानव के लिये समीचीन है। **(अध्याय: 4, पेज नंबर: 116–118)**

- स्वायत्त मानव परंपरा में सभा क्रम, परिवार क्रम, 10–10 की संख्या में सहज ही पहचाना जाता है। सर्वमानव स्वायत्त मानव रूप में अपने प्रतिष्ठा को जानने–मानने, पहचानने–निर्वाह करने का सौभाग्य मानवीयतापूर्ण शिक्षा परंपरा में, से नित्य गति के रूप में समीचीन रहता है। सह–अस्तित्व विधि से व्यवस्था को, जागृति विधि से परिवार को पहचानना, निर्वाह करना मानव सहज आवश्यकता व वैभव है। अस्तित्व सहज रूप में ही सह–अस्तित्व वर्तमान है। यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था, इसी धरती पर नियति क्रम विधि से प्रमाणित है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि जागृति का धारक–वाहकता प्रत्येक मानव का जागृति सहज स्वत्व है; और सह–अस्तित्व सहज वैभव है। इस प्रकार अस्तित्व सहज व्यवस्था को जानना–मानना–पहचानना, निर्वाह करना ज्ञानावस्था सहज जागृत मानव से ही प्रमाणित होती है। जागृति सहज विधि से ही समाज रचना स्वाभाविक होता है अथवा होने वाला स्वरूप है। होना वर्तमान ही है। वर्तमान की निरंतरता है। इसलिये व्यवस्था एवं समाज की निरंतरता है। सभा क्रम में निर्वाचन विधि से सम्पन्न होता है। परिवार रचना अर्थात् अखण्ड समाज रचना विधि सम्बन्धों की पहचान विधि से सम्पन्न हो जाता है। यथा एक परिवार में दस स्वायत्त मानवों के सहभागिता को पहचाना जाता है। जो परस्परता में सम्बन्ध मूल्य–मूल्यांकन–उभयतृप्ति पूर्वक रहते हैं, परिवारगत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होते हैं यह सर्ववांछित स्वरूप स्वायत्त मानव जागृत सहज वैभव के रूप में पाया जाता है। सह–अस्तित्व सहज प्रमाण के रूप में एक से अधिक व्यक्तियों का होना भी प्रमाणित होता है। इसीलिये दस व्यक्तियों का होना संख्या के रूप में बतायी जाती है, घटना के रूप में यह संख्या ज्यादा कम हो सकता है। क्योंकि मानव संख्या के अर्थ में सीमित नहीं है किंवा कोई भी वस्तु संख्या के रूप में सीमित नहीं है क्योंकि हरेक–एक रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज वैभव है, अविभाज्य है। **गणित** केवल रूप सीमावर्ती गणना है। आंशिक रूप में गुण (गति) का भी गणना सम्पन्न होता है। धर्म, स्वभाव और मध्यस्थ गुण (गति) का गणना संभव ही नहीं है। अतएव **गणित** विधि के साथ गुण और कारण विधि से मानव अपने भाषा को इनके अविभाज्य विधि से समृद्ध बनाने की आवश्यकता है। इन तीनों विधि से ही हर वस्तु को, उन–उनके सम्पूर्णता को समझना सहज है। हर वस्तु अपने सम्पूर्णता में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म का वैभव है। ऐसे सम्पूर्णता का महिमा ही है प्रत्येक अपने 'त्व' सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदार है। **(अध्याय: 6, पेज नंबर: 173–174)**
- जागृतिपूर्वक ही सम्बन्ध स्वीकृति अवधारणा में हो पाता है यही एक संस्कार है। ऐसी अवधारणा ही सम्बन्धों का प्रयोजन सहज सत्य के रूप में स्वीकृत होना देखा गया। यह क्रिया जागृत जीवन शक्तियों का दर्शन क्रियाकलाप के फलस्वरूप घटित होना देखा गया है। जागृत जीवन बल ही मूल्य और मूल्यांकन में प्रस्तुत होता है। फलस्वरूप समाधान समीकृत (फलित) होता है। यही मानव धर्म सहज सुख का स्रोत है। यह स्रोत प्रत्येक मानव में जागृत जीवन के रूप में वैभवित होना पाया जाता है। जीवन जागृत होने में कोई भी, कितना भी भ्रमित परिकल्पनाएं बाधा का कारण नहीं हो पाता है, जैसे–विविध रंग, जाति, वर्ग, देश, भाषा, लिंग, नस्ल। यह सभी मिलकर अथवा किसी एक जो मानव में विविधता का कल्पना समा लिया वह सब जागृति के सम्मुख होने के स्थिति में अपने आप

विलय हो जाता है। एक सूत्र में सभी व्यर्थ–अनर्थ, पाश्वीय–राक्षसी कल्पनायें मानवीयता सहज जागृति के प्रभाव के साथ साथ ही सभी भ्रम, निभ्रम (जागृति) में विलय हो जाते हैं। जैसे एक **गणित** का प्रश्न का, सही उत्तर पाने के लिये प्रक्रिया–प्रयास तब तक किया जाता है जब तक सही उत्तर पाया नहीं गया। जब सही उत्तर समझ में आ जाती है उसी के साथ–साथ गलती करने वाला विविध भ्रम अपने–आप उत्तर ज्ञान में विलय हो जाता है। विलय होने का तात्पर्य इतना ही है जिसका प्रभाव शेष नहीं निशेष हो जाता है। (**अध्याय: 6, पेज नंबर: 199–200**)

- जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सहज अध्ययन, न्याय, धर्म, सत्य प्रमाणित करने योग्य क्षमता, पात्रता को स्थापित करता है। अस्तित्व दर्शन स्वयं विज्ञान का सम्पूर्ण आधार है। अस्तित्व में ही समग्र व्यवस्था सूत्र और कार्य देखने को मिलता है। यही अस्तित्व दर्शन का जीवन जागृति क्रम में होने वाला उपकार है। विज्ञान का काल, क्रिया, निर्णयों की अविभाज्यता और सार्थकता की दिशावाही होना पाया जाता है। घटनाओं के अवधि के साथ काल को एक इकाई के रूप में स्वीकारने की बात मानव की एक आवश्यकता है। जैसे सूर्योदय से पुर्नसूर्योदय तक एक घटना है। यह घटना निरंतर है। निरंतर घटित होने वाला घटना नाम देने के फलस्वरूप उस घटना से घटना तक निश्चित दूरी धरती तय किया रहता है। इसे हम मानव ने एक दिन नाम दिया। अब इस एक दिन को भाग–विभाग विधि से 60 घड़ी, 24घंटा आदि नाम से विखंडन किया। मूलत: एक दिन को धरती की गति से पहचानी गई थी, खंड–विखंडन विधि से छोटे–से–छोटे खंड में हम पहुँच जाते हैं और पहुँच गये हैं। फलस्वरूप वर्तमान की अवधि शून्य सी होती गई। धरती की क्रिया यथावत् अनुस्यूत विधि से आवर्तित हो ही रही है। इससे पता लगता है मानव के कल्पनाशीलता क्रम से किया गया विखंडन यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता से भिन्न स्थिति में अथवा भिन्न स्थिति को स्वीकारने के लिये बाध्य करता गया। यह भ्रम, भ्रमित आदमी को और भ्रमित होने के लिये सहायक हो गया। इसका सार तथ्य विखण्डन विधि से किसी तथ्य को पहचानना संभव नहीं है। अथक कल्पनाशीलता मानव के पास, दूसरे नाम से विज्ञानियों के पास हैं ही और कल्पनाशीलता वश ही विखण्डन प्रवृत्ति के रूप में सत्य का खोज के लिए, जो कुछ भी यांत्रिक, सांकरिक विधि (संकर विधि) प्रयोग किया गया। उन प्रयोगों को काल्पनिक मंजिल मान लिया गया। उस मंजिल को अंतिम सत्य न मानने का प्रतिज्ञा भी करते आया। इन दोनों उपलब्धियों को विखण्डन विधि से पा गये ऐसा विज्ञान का सोचना है। **गणित** का मूल गति तत्व मानव का कल्पना है। **गणित** का प्रयोजन यंत्र प्रमाण है और उसके लिये विघटन आवश्यक है। यही मान्यताएँ है। जबकि देखने को यह मिलता है कि किसी यंत्र का संरचना अथवा संकरित पौधा, संकरित जीव–जानवर का शरीर संकरित बीज इन क्रियाकलापों को करते हुए विधिवत् संयोजन होना पाया जाता है अथवा किया जाना पाया जाता है। (**अध्याय: 6, पेज नंबर: 217–219**)

सन्दर्भ : आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- अस्थिरता अनिश्चयता मूलक वस्तु केन्द्रित चिन्तन को तर्क संगत विधि से विज्ञान मान लिया गया। विज्ञान को नियमों के रूप में प्राप्त कर, **गणितीय** भाषा सहित प्रयोग योग्य स्वरूप देना माना गया और उसे क्रियान्वयन करने की प्रक्रियाओं को तकनीकी कहा गया। यह सब मानवेत्तर संसार के साथ, वह भी पदार्थावस्था के साथ, अर्थात् मृत, पाषाण, मणि, धातुओं के साथ यंत्रीकरण, तंत्रीकरण, जल, थल, नभ प्रदेशों में स्वत्व गतिकरण कार्यकलापों के रूप में दिखने को मिलता है। ये सब उपलब्धियाँ विज्ञान का ही देन स्वीकारा गया है। उल्लेखनीय घटना यही है कि विज्ञान वैज्ञानिक नियमों और सिद्धांतों से मानव का अध्ययन सर्वतोमुखी विधि से सम्पन्न नहीं हो पाया है। फलस्वरूप अर्थशास्त्र भी किंवा प्रचलित सभी शास्त्र अथवा सभी प्रकार के शास्त्र मानव से आशित सर्वशुभ रूपी प्रयोजनों को चरितार्थ करने में सर्वथा पराभवित रहे हैं। जबकि हर मानव हर विधा के कर्ता–धर्ता भी सर्वशुभ चाहते हैं। इसलिए रहस्य और अस्थिरता अनिश्चयता से मुक्त नित्य वर्तमान रूपी सह–अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन अवश्यंभावी रहा ही। अस्तित्व न तो घटता है, न बढ़ता है, नित्य वर्तमान प्रकटनशील है ही इसलिए अस्तित्व स्थिर होना पाया जाता है। स्थिरता का मतलब निरंतर होना ही है। वर्तमान सहज प्रकाशन है। इसीलिए रहस्य विहीन है, यथार्थ वास्तविकता, सत्यतामय है। अस्तु इसकी स्थिरता स्पष्ट है। इस प्रकार अस्तित्व अपने में महिमा समेत होना समझ में आता है। **(अध्याय:2, पेज नंबर: 23–24)**
- देश का आधार सत्ता है यही विस्तार हैं। सत्तामय इसे हम व्यापक नाम दिया है, देश का लम्बाई–चौड़ाई–ऊंचाई–गहराई का कहीं पता नहीं लगता, कारण–गुण–**गणित** विधि से देखने को नहीं मिलता। मानव कल्पना में आता नहीं। इन्हीं के नापदण्ड अथवा नाप मानव के लिए असम्भव रहा इसलिए अस्तित्व में नित्य वैभवित सत्ता को व्यापक ही कहना बन पाया। इसके पहले यह भी समझ चुके हैं कि सत्ता संपूर्ण प्रकृति के लिए पारदर्शी है। प्रकृति में पारगामी है। प्रकृति के लिए नियम है। नियम ही अथवा नियम सहित ही अस्तित्व बोध होता है यही मानव में ज्ञान है। इसी क्रम में पारगामीयता का प्रमाण संपूर्ण पदार्थ व प्रकृति अपने में नित्य क्रियाशील होने के रूप में और क्रियाशीलता के मूल में बड़े –से–बड़े, छोटे–से–छोटे वस्तुएं ऊर्जा सम्पन्न और बल सम्पन्न रहना पाया जाता है। भले ही इनके नाम को जैसे भी हम रख लें। इस प्रकार मानव में ऊर्जा सम्पन्नता ही ज्ञान सम्पन्नता है। ऊर्जा सम्पन्नता क्रियाशीलता और हर ग्रह–गोल–ब्रह्माण्ड नियंत्रित रहना पाया जाता है। सभी नियंत्रण निश्चित अच्छी दूरी में से ही स्पष्ट होना देखा गया है। इस प्रकार सत्ता में प्रकृति सह–अस्तित्व सहज रूप में विद्यमान है। यह सह–अस्तित्व सहज वैभव स्वयं संपूर्ण प्रकृति सत्तामयता में से के लिए को प्रमाणित करने में व्यस्त है अथवा रत है और कहीं इनका अवरोध, प्रतिरोध, विरोध लवलेश भी न होकर निरंतर संगीत, निरंतर उत्सव, नित्य वैभव के रूप में ही नित्य वर्तमान है। **(अध्याय: 4, पेज नंबर: 81–82)**

सन्दर्भ : मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(संस्करण: 2008)

- काल :– क्रिया की अवधि।

मानव जाति अपने स्वरूप में मानव में, से, के लिए मौलिकता का प्रकाशन है। मौलिकता में हर जागृत मानव का "त्व'' सहित व्यवस्था समाहित रहती है। यह विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम और जागृति का प्रमाण है। इस वर्तमान में अर्थात बीसवीं सदी की दसवीं दशक में सर्वाधिक मानव भ्रांतिपद में होते हुए ज्ञानावस्था में है। अर्थात ज्ञान समृद्ध होने के लिए उम्मीदवार के रूप में है इसलिए जागृति क्रम में होना स्वीकार होता है। सर्व मानव ही ज्ञानावस्था की इकाई के रूप में वर्तमान है।

जातियों का दर्शक मानव है अर्थात समझने वाला मानव है। पदार्थावस्था से, ज्ञानावस्था के जागृत मानव पर्यन्त जातियों की विविधता वर्तमान है। इन विविधताओं के मूल में जो मौलिक वस्तु है, यही जाति व समुदाय का आधार है। मानव परम्परा के अतिरिक्त और सभी अवस्था के यथा जीवावस्था, प्राणावस्था, पदार्थावस्था में प्रत्येक एक–एक समुदाय अपने–अपने जाति के अनुसार आचरण करता हुआ देखने को मिलता है यही "त्व'' सहित अवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी का सूत्र है। मनुष्येत्तर प्रकृति में हर जाति अपने–अपने समुदाय के रूप में मौलिक है क्योंकि व्यवस्था सूत्र से सूत्रित है। मानव को अखंड जाति के रूप में प्रदिपादित संबोधित करने के क्रम में यह शास्त्र है।

मानव जब मानवत्व को पहचानता है, स्वीकारता है, निश्चय करता है तभी जागृति के प्रमाण के रूप में स्वंय में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करता है। मानव का स्वत्व मानवत्व है ही, इसलिए मानवजाति का आधार मानवत्व है। स्वतंत्रता व स्वराज्य ही मानवत्व का लक्ष्य है। प्रत्येक मनुष्य मानवीयता पूर्ण आचरण में सहज विधि से मानव है। इसे हर देश काल परिस्थिति में परखा गया है। यह जागृति का वैभव है। इस प्रकार हर एक जागृत मानव का भी "त्व'' सहित व्यवस्था के रूप में जागृत मानव परम्परा सहज होना स्पष्ट है। अस्तु, मानवत्व सहज समानता के आधार पर मानव का भी परम्परा के रूप में स्पष्ट होना ही, व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होने का तात्पर्य है। मानवीयतापूर्ण मानव परम्परा में ही, मानव जाति की अखंडता वर्तमानित होती है। यही अखंड समाज का सूत्र है। जागृत मनुष्य की मौलिकता यही है। यह सम्बंधों को पहचानने व मूल्यों को निर्वाह करने के क्रम में, से, के लिए स्पष्ट है। सम्बंधों को पहचानना, निर्वाह करना तभी संभव हो पाता है जब जीवन ज्ञान अस्तित्वदर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत हो जाये इसी के लिए मानव परम्परा में बहुआयामी प्रयास की आवश्यकता है। अतएव जागृत विधि से व्यवस्था सूत्र अपने–आप निष्पन्न और प्रमाणित होता है। जागृत परिवार मानव ही अखंड समाज में भागीदारी करने में तत्पर होते है। मनुष्य मूलत: परिवार मानव है, क्योंकि परिवार में ही

आरंभिक व्यक्तित्व और प्रतिभा के संतुलन की अपेक्षा एवं प्रमाण सहज होना पाया जाता है। परिवार में सम्बन्ध और मूल्यों की पहचान और निर्वाह होने के क्रम में, व्यवस्था सूत्र स्पष्ट होना पाया जाता है। ऐसे परिवार में नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय सहज ही प्रमाणित होता है। न्याय का प्रामाणिक होना ही प्रधान रूप है। फलस्वरूप परिवारगत व्यवसाय भागीदारी सहज हो जाता है। व्यवसाय के साथ विनिमय की अनिवार्य स्थिति बनती है। विनियम सहजता के लिए विभिन्न वस्तुओं को श्रम मूल्य के आधार पर विनियम कार्य को स्थापति कर लेना मानव सहज कार्य है। इस क्रम में श्रम मूल्य और श्रम को पहचानना, एक अनिवार्यता बन पाती है। श्रम मूल्य का स्रोत, प्रत्येक मनुष्य में स्वस्थ शरीर के द्वारा, स्वस्थ मानस ही है। स्वस्थ मानस का स्वरूप, प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन पूर्वक उपयोगिता व कला मूल्य स्थापित करने, सम्बंधों व मूल्यों को पहचानने व निर्वाह करने, व मूल्यांकन करने के रूप में प्रमाणित होता है। इसी के साथ अस्तित्व, अस्तित्व में सह–अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन–जागृति, रासायनिक–भौतिक रचना–विरचनाओं के प्रति समझदारी, जो जानने–मानने के रूप में प्रमाणित होती है, यही स्वस्थ मानस का स्वरूप है। इसे निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य के नाम से इंगित कराया जाता है। निपुणता = प्राकृतिक ऐश्वर्य पर उपयोगिता व कला मूल्य को स्थापित कर प्रमाणित करना। कुशलता = प्राकृतिक ऐश्वर्य पर उपयोगिता मूल्य स्थापित करना। पांडित्य = ज्ञान विज्ञान विवेक सम्मत सूझ–बूझ तैयार करने तद्नुसार प्रमाणित होने से है। यह प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिए संभव है। ऐसी संभावना को सर्वसुलभ बनाए रखना मानव परम्परा है। ऐसी मानव परम्परा के आधार पर ही मानव जाति की एकता, अखंडता व अक्षुण्णता सहज ही होना पाया जाता है। इस प्रकार मानव जाति एक ही है। यह अपने आप स्पष्ट है। परम्परा का वैभव अथवा मानव परम्परा का वैभव, ज्ञानावस्था का मानव, संस्कारानुषंगी अभिव्यक्ति होने के कारण मानवीय शिक्षा, संस्कार, मानवीय संविधान, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था मानवीयतापूर्ण संस्कृति–सभ्यता परम्परा का प्रधान आयाम है। जागृत मानव संस्कृति सभ्यता सहित सार्वभौम व्यवस्था और अखंड समाज में भागीदारी का प्रमाण है। उसकी सार्वभौमता सहज है।

ये सब संगतियाँ मानव को जागृति के लिए उत्प्रेरित करती हैं। हर संतान के लिए परम्परा ही जागृति का स्रोत है। परम्परा के चारों आयामों का, जागृति–सूत्र और व्याख्या होना ही स्वस्थ मानव परम्परा है। हर मानव संतान के लिए पीछे पीढ़ी परम्परा के रूप में सुलभ सार्थक होने का स्रोत है। अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान पूर्वक जीवन–ज्ञान सहित मानवीय शिक्षा संस्कार, मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान व सार्वभौम व्यवस्था को पहचानना सुलभ हो पाता है। इस प्रकार जागृत परम्परा में, मानव जाति का एक होना, स्पष्ट हो जाता है।

काल :– काल, क्रिया की अवधि के रूप में गणना किया जाता है। नित्य वर्तमान ही काल है। सम्पूर्ण क्रियाएं निश्चित अवधि के अनंतर पुन: आवर्तित होती हैं अथवा परिणाम और परिवर्तन समस्या समाधान को प्राप्त करती हैं। इसी क्रम में काल गणना का होना पाया जाता है। इसलिए, क्रिया की अवधि = काल की पहचान मानव ने की है।

इसी आधार पर प्रत्येक क्रिया को, काल की अवधि में देखने का प्रयास मानव करता है। प्रत्येक क्रिया अपने में नियति सहज निरंतर है। मनुष्य जो काल की अवधि में, क्रियाओं को प्रमाणित करने गया, वह केवल जड़ प्रकृति के साथ आंशिक रूप में सफल हो पाया, जो यंत्र संसार है। उल्लेखनीय बात यह है कि, सम्पूर्ण यंत्र मनुष्य की कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों की गति को, विपुल (अर्थात अधिकाधिक गति) बनाने के क्रम में सार्थक हुए हैं। यही दूर संचार क्रिया कलाप है। कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों की स्वभाव गति जीवन जागृति पूर्वक सामाजिक हो पाती हैं। जागृति हर मनुष्य को स्वीकृत है। काल का द्रष्टा मानव है इसलिए किसी क्रिया की अवधि में अर्थात् भौतिक क्रिया की अवधि में मानव व्याख्यायित नहीं हो पाता। अस्तित्व नित्य वर्तमान है, सह–अस्तित्व नित्य वर्तमान है। भौतिक रासायनिक क्रिया–कलाप नित्य वर्तमान है, जीवन नित्य है ही। इस प्रकार काल की अवधि में किसी भी वस्तु की सटीक व्याख्या संभव नहीं है। क्योंकि वस्तु की क्रियाशीलता निरंतर है। सहज तथ्य यही है कि हर अवस्था पद में स्थित हर वस्तुओं को वर्तमान के आधार पर पूर्णतया समझा जा सकता है क्योंकि हर एक वस्तु अपने रूप, गुण स्वभाव सहित अपने वातावरण सम्पन्न पाया जाता है यह अध्ययनगम्य है। इसी सत्यतावश अध्ययनगम्य कराने के क्रम में ही यह मनोविज्ञान शास्त्र प्रस्तुत है। मनुष्य अपने द्रष्टा पद प्रतिष्ठा क्रम में ही सम्पूर्ण क्रिया, स्थिति, गति, विकास, परिणाम, परिवर्तन और जागृति को पहचानता है। प्रमुख बात यह है कि मनुष्य ही काल का द्रष्टा होता है, न कि काल मनुष्य को व्याख्यायित कर पाता है। कालखंड की सीमा में मानव व्याख्यायित नहीं हो पाता। क्रिया की अवधि को काल के रूप में गणना करना इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक संयोग–वियोग घटनाओं को, फल परिणाम घटनाओं को, परिवर्तन घटनाओं को काल और संख्या क्रम में गणना करते है। जबकि सम्पूर्ण वस्तु क्रिया निरंतर बना ही रहता है। जैसे – शरीर रचना की एक निश्चित अवधि में आरंभ होना, शिशु, बाल्य, कौमार्य, यौवन, प्रौढ़ और वृद्ध अवस्थाओं को पार करता हुआ एक दिन शरीर विरचित हो ही जाता है। इस अवधि को हम काल के नाम से जानते है। जबकि रचना–विरचना अनुस्युत क्रिया है। रचना–विरचना नित्य निरंतर होने वाली घटना है साथ ही रचना में सम्मिलित होने वाली वस्तुएं अस्तित्व में रहती ही हैं। अस्तु काल गणना, किसी क्रिया की अवधि के रूप में पहचानी गई है जैसे यह धरती अपने में सूर्योदय से सूर्योदय तक। काल का द्रष्टा होने का तात्पर्य क्रिया, और क्रिया की अवधि, धटना, परिणाम, स्थिति, गति, अनंत, व्यापक का द्रष्टा होने से है। इस प्रकार अस्तित्व द्रष्टा भी मानव है। अस्तित्व सहज रूप में नित्य वर्तमान है। अस्तित्व अपने में न कोई शुरूआत है, न कोई अंत है। ग्रह गोलों के सम्बंध में वे कितनी संख्या में अस्तित्व में है इसकी आवश्यकता मानव जाति को नहीं है। जितनी आवश्यकता बनती है उतने में से कुछ ग्रह–गोलों को मानव समझने का प्रयत्न करता ही है। अभी तक इस धरती के मानव ने जो पता लगाने की कोशिश की है उसमे सकारात्मक सार्थक उद्देश्य कुछ भी नहीं रहा। इन प्रयासों के चलते दूरसंचार कार्य सार्थक हो गया। यही सकारात्मक भाग है। हर छोटी से छोटी या बड़ी से बड़ी वस्तु का अस्तित्व बना ही रहता है। विकास क्रम और रचना क्रम में जो परिणाम होते हैं, उसकी अवधि को समझा जाना संभव है। जैसे एक बीज बोकर नैसर्गिकता के संयोग सहित पुन: बीज पर्यन्त अवधि को

पहचाना जा सकता है। विभिन्न द्रव्यों का संयोग कर, रासायनिक रूप में परिणामों को देखा जा सकता है। इसकी अवधि भी समझी जाती है। किसी वस्तु को अम्लीय–क्षारीय संयोग में लाकर उसके परिणाम को पहचाना जा सकता है इसकी अवधि को आकलित किया जा सकता है। जीव और मनुष्य शरीर, प्राणकोषाओं से रचित भ्रूण सूत्रों का रासायनिक वैभवों के संयोग से विपुलीकरण विधि और ऐसे भ्रूण सूत्रों से संपादित एवं रचित रचनाओं की अवधियों को पहचानना सहज है, इसका आकलन संभव है। इस प्रकार हर रचना की विरचना का भी आकलन होता है। इन्हीं सहज तथ्यों के आधार पर, सम्पूर्ण यंत्रों की रचना विधि, कार्य विधि, उपयोग विधि पहचानने में आती है। जिसका आकलन सहज है। इस प्रकार मनुष्य के द्वारा पहचानी हुई क्रिया की अवधि रूपी काल की महिमा के वर्चस्व को मानव सुविधा के रूप में देखा जाता है। यही सब मानव से मान्य काल का प्रयोजन है। इन सबकी अवधित कार्य की निरंतरता से नित्य वर्तमान स्पष्ट होता है।

अस्तित्व नित्य वर्तमान होने के कारण, वर्तमान अक्षुण्ण सहज है, इसलिए इसका काल खंड संभव नहीं है। मानव सहज कल्पनाशीलता का प्रयोग करने के उपरान्त ही, वर्तमान समझ में आता है, साथ ही कल्पना का सम्पूर्ण आधार और प्रेरणा, अस्तित्व और वर्तमान ही है। अस्तित्व सहज सह–अस्तित्व होना ही विकास, जीवन, जीवन–जागृति, पूरकता, उदात्तीकरण, रचना व विरचानाएं सतत वर्तमान हैं। कितने भी विखंडन के उपरान्त, एक का सहज रहना, वर्तमान रहता है। समग्र अस्तित्व का भाग पूर्वक, मनुष्य जितना भी प्रयत्न करे, प्रत्येक “एक’’ अस्तित्व में अविभाज्य होना प्रमाणित है। सम्पूर्ण अस्तित्व सत्ता में संपृक्त सहज अस्तित्व होना वर्तमान है। सत्ता स्थितिपूर्ण व्यापक है, सत्ता में संपृक्त अनंत एक एक प्रकृति है। मानव कितना भी नापे और नापने की वस्तु समीचीन रहती ही है। और कितना भी गिने पुन: गिनने के लिए वस्तु समीचीन रहती ही है। इसलिए अस्तित्व व्यापक, अनंत के रूप में वर्तमान है। अस्तु, अस्तित्व, अविरत वर्तमान है। सम्पूर्ण भावों का होना, वर्तमान सहज महिमा है। वास्तविकता यथार्थता व सत्यता, स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य, सहज रूप में जानने–मानने, पहचानने–निर्वाह करने के रूप में है। प्रत्येक एक का अपने रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज अविभाज्यता ही भाव है। भाव सहजता भी वर्तमान में होना ही है। सत्तामयता ही अस्तित्व में स्थिरता सहज भाव है और सत्ता में संपृक्त प्रकृति विकास और जागृति सहज निश्चयता का प्रमाण है। सत्ता का व्यापक होना स्थिरता का और सत्ता में संपृक्त प्रकृति, विविधता सहित जागृति रूप में, विकास में निश्चयता का प्रमाण नित्य वर्तमान है। ऐसी स्थिरता, निश्चयता सहज वर्तमान है। यह मानव संचेतना, जीवन–जागृति, द्रष्टा पद वैभव का सहज प्रमाण है।

मानव संचेतना व यांत्रिकता एवं यंत्र सहज प्रामाणिकता, जागृति व जागृति क्रम में होने वाला, प्रमाण व प्रामाणिकता है। यन्त्रवाद के क्रम में मनुष्य द्वारा, क्रिया की अवधि के रूप में काल गणना सहज हुई है। जो आवश्यक रहा है। इस प्रकार जागृत मानव, अस्तित्व सहज जागृति के रूप में वर्तमान है। जो जागृति सम्पन्न, जीवन संचेतना का प्रमाण है। यन्त्रों का संधान–अनुसंधान, मनुष्य सहज जागृति क्रम में संभावित है। इसी क्रम में

मानव क्रिया की अवधि को काल मान लेता है जो यांत्रिकी **गणित** ग्राही है। **(अध्याय: 5 (5.21), पेज नंबर: 170–176)**

- सम्पूर्ण वांङ्मय अर्थात श्रुति (सुनने योग्य, सुनाने योग्य, भाषा, परिभाषा जो सोच विचार निश्चय और समझदारी प्रवर्तन भाषाकरण सूत्रीकरण, वाक्य प्रबंधन, संवाद के रूप में प्रचलित रहता ही है।) यथार्थता का स्वरूप जैसा जिसकी मौलिकता है उसे इंगित करने, निर्देशित करने और चिन्हित करने के रूप में श्रुति का प्रयोजन सार्थक होता हुआ नजर आता है। जिसका जो अर्थ का स्वरूप प्रत्येक एक में रूप, गुण, स्वभाव के रूप में व्याख्यायित होना पाया जाता है। इन चारों आयामों की अविभाज्यता में प्रत्येक एक व्यवस्था के रूप में मूल्यांकित होता है और प्रत्येक एक क्रिया के रूप में ही मिलता है।

(१) पदार्थावस्था में आकार आयतन घन के रूप में रूप, समविषम मध्यस्थ क्रिया–कलाप के रूप में गुण, संगठन–विघटन के रूप में स्वभाव, अस्तित्व सहज रूप में धर्म स्पष्ट है। पूर्णता को इंगित करने कराने के अर्थ में प्रयोग किया गया भाषा एवं परिभाषा है।

(2) प्राणावस्था में आकार आयतन घन के रूप में रूप सम–विषम मध्यस्थ के रूप में, गुण सारक–मारक के रूप में स्वभाव और अस्तित्व सहज पुष्टि रूप में धर्म होना समझ में आता है।

(3) जीवावस्था में आकार आयतन घन रूप, सम विषम मध्यस्थ गुण, क्रूर–अक्रूर स्वभाव, और अस्तित्व पुष्टि सहित आशा के रूप में धर्म पहचानने में आता है।

(4) ज्ञानावस्था में मानव आकार आयतन घन के रूप में रूप, सम विषम मध्यस्थ के रूप में गुण; धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा, स्वभाव; अस्तित्व पुष्टि, आशा सुख के रूप में धर्म समझ में आता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्वभाव धर्म ही प्रत्येक अवस्था की मौलिक पहचान है और क्रम से पदार्थावस्था में रूप, प्राणावस्था में रूप गुण, जीवावस्था के रूप गुण स्वभाव, ज्ञानावस्था में मानव रूप गुण स्वभाव धर्म, प्रधान पहचान सार्वभौम होना पाया जाता है।

मानव परम्परा में सार्वभौमता एक अपेक्षा है। सार्वभौमता को नित्य निरंतर बनाये रखने के क्रम में अथवा परम्परा के रूप में निर्वाह करने के क्रम में श्रुति सहज आवश्यकता; उसकी निरंतता के लिए निश्चयन और पारंगत होने की विधि मानव परम्परा में, से, के लिए सार्थक होना पाया जाता है।

उक्त जिज्ञासा सार्थकता के योगफल सहज विधि से भाषाओं का निर्देष्ट अर्थ प्रसवन सहज उपलब्धि को पाने के लिए विविध देश काल में अथक परिश्रम किया गया है। भाषाएं मानव को आज की स्थिति में सहज सुलभ हुई ही है। भाषा सहज विकास उसका अर्थ सहज प्रभाव प्रक्रिया के अर्थ में ही शब्द और वाक्य, शब्द वाक्य संगत, सूत्र, वाक्य संगत परिभाषा सूत्र संगत गद्य पद्य, प्रबंध निबंध रूपों में सभी भाषावादियों विदों के समुन्नत परिष्कृत निश्चित

रूप प्रदान करने का कार्य अदम्य रूप में किया। इस को क्रमागत विधि सम्मत भाषाओं को मूल्यांकित किया जाना सहज है आवश्यक भी है।

मानव परम्परा में पीढ़ी से पीढ़ी भाषापूर्वक शुभ, धर्म, सत्य, जागृति, भक्ति, विरक्ति, जीवन, जीवजगत, वस्तुओं का नामकरण, क्रियाओं का नामकरण, देशकाल, दिशा का नामकरण उपलब्ध हुआ। ये सब श्रुति के रूप में ही गण्य होता है। इतना ही नहीं सत्य, परम सत्य, उद्धार, सार्थक, स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य, भक्ति, विरक्ति, बंधन, मोक्ष हर देवी–देवताओं को निश्चित रूप में इंगित, बोध कराने के आशय से भाषाओं में अथक प्रयास हुआ। सर्वाधिक सम्मान जनक भाषाओं को मानव परंपराओं के लिए विगत के मनीषियों ने प्रदान किया है। जबकि मानव भाषा कारण गुण **गणित** के अविभाज्य रूप में है। जिससे ही परम सत्य रूपी सह–अस्तित्व भासाभास पूर्वक प्रतीति सहज बोध, सार्थक होना पाया गया। फलतः अनुभव होना सिद्व हुआ। **(अध्याय: 5 (5.31), पेज नंबर: 189–191)**

- भाषा के रूप में भाषा अपने गति में व्यापार भाषा, यांत्रिक भाषा, व्यवसाय भाषा, व्यवस्थात्मक भाषा, राजनैतिक भाषा, दार्शनिक भाषा, शास्त्रीय भाषा, साहित्य भाषा, सांकेतिक भाषाओं के वर्गीकृत रूप को भी प्रस्तुत करने का प्रयास देखने को मिला है। इन सब प्रयासों के प्रति वर्तमान पीढ़ी कृतज्ञ है ही। पीढ़ी से पीढ़ी श्रुरति की सार्थकता को पहचानने की कोशिश किया गया। अभी भी शोध प्रयास जारी है। इन्हीं शोध प्रयास के चिन्ह रूप में अनेकानेक धर्म, समुदाय, मत, जाति, वेश, पंथों को पहचानना बना ही है। अभी भी सम्पूर्ण धरती पर उचित संप्रेषित जितने भी प्रकार की श्रुतियाँ है उन सबके साथ विविधि प्रकार से किये गये शोध के उपरान्त भी सार्वभौम प्रयोजन लोक व्यापीकरण होना संभव नहीं हो पाया। यह विकल्प के लिए प्रेरक रहा है।

उक्त विधि से निरूपण यथार्थता, सत्यता, वास्तविकता की जिज्ञासा वश ही अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन, मानव के लिए समीचीन हुई। इसमें परम्परागत भाषा अथवा शब्दों को कारण गुण **गणित** के अर्थ में प्रयोग किया है। जहाँ जहाँ परम्परागत विधि से मान्य अर्थ है या अर्थ सूचक है उसे परिभाषा विधि से सह–अस्तित्व तथ्यों और प्रयोजन सहज तथ्यों को इंगित कराने की प्रणाली अपनाया हुआ है। इसी के साथ तथ्यों की धारक वाहकता के रूप में मानव को निश्चित ध्रुव के रूप में पहचान चुके हैं। इस प्रकार से धारक वाहकता एक ध्रुव, सह–अस्तित्व एक ध्रुव, मानव प्रयोजन, जीवन प्रयोजन एक–एक धुरव, के रूप में पहचान चुके हैं। संदर्भानुसार इन्हीं किन्हीं दो ध्रुवों के साथ संयोजित रूप हर अध्ययनशील मेधावियों को सहज सुलभ होने की कामना से मध्यस्थ दर्शन सह–अस्तित्ववाद को प्रस्तुत किया है। इसी के अंगभूत मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र प्रस्तुत है। **(अध्याय: 5 (5.31), पेज नंबर: 191)**

- जीवन जागृति पूर्वक ही सूक्ष्म व सूक्ष्मतम कांति को अर्थात् प्रकाशन को पहचानता है। यह सबको समझ में आता है कि जड़–चैतन्य प्रकृति व्यापक वस्तु में नित्य वर्तमान और प्रकाशमान है। व्यापक वस्तु सहज प्रकाश मानता, पारगामी, पारदर्शिता के रूप में समझ में आता है। यह पारदर्शिता, पारगम्यता स्वयं में अतुल्य महिमा है। यह व्यापक वस्तु सहज कांति है। व्यापकता का कोई आयाम नहीं हो पाता क्योंकि व्यापक वस्तु कितना लंबा चौड़ा है इसको मानव निर्मित किसी भी मापदंड, धन, ऋणात्मक **गणित** विधि से अर्थात् जोड़ घटाने की संख्यात्मक रूप में निर्धारित नहीं कर सकते यह अवश्य अनुभव किया गया है कि जितने भी अनुभव क्षेत्र में, कल्पना क्षेत्र में है उससे अधिक व्यापक वस्तु है ही। कल्पना भी हम वर्षों करें और–और विधि से, अंततोगत्वा कल्पना के विस्तार से अधिक होने की गवाही कल्पना को भी मिलती है अनुभव को भी मिलती है मापदंड से भी मिलती है, कार्य व्यवहार पहुँच में सब को जितने भी पहुंच दौड़ हो पाता है वह कल्पना क्षेत्र के एक छोटे भाग में सिमटा रहता है। हमारी कल्पना और अनुभव सर्वाधिक विशाल, सर्वाधिक गति के रूप में पहचाना गया है। मनुष्य का कार्यगति, कार्य की सीमा सदा **गणितीय** गति से कम होता ही है।

  जैसे प्रकाश की गति, विद्युत गति के बारे में **गणित** अपने निष्कर्षों को निकालता है। इसी प्रकार धरती गति, परमाणु की गति भी निष्कर्ष **गणित** द्वारा निकाल लेते है। प्रकाश गति का दृष्ट प्रमाण संख्या क्रम में स्पष्ट होना अभी भी विचाराधीन है ही। प्रकाशगति के आधार पर अथवा प्रकाश गति के अनुरूप किसी वस्तु का गति होने पर वह वस्तु अक्षय होने का दावा है। यदि यह सचाई है तब प्रकाशगति निरंतर स्वयं निरंतर विद्यमान, गतिमान रहना ही था। ऐसा कुछ देखने को आसार मिला नहीं। जो कुछ भी मिला है वह यह कि हर वस्तु विद्यमान है, गतिमान है और इसी के साथ प्रकाशमानता सह–अस्तित्व सहज वैभव है। **(अध्याय: 5 (5.31), पेज नंबर: 214–215)**

- "स्थिति सत्य", "वस्तु स्थिति सत्य", "वस्तु गत सत्य" को जानना–मानना, अनुभव करना, अस्तित्व–दर्शन सूत्र है। कारण, गुण, **गणितात्मक** मानव भाषा को जानना, मानना, अनुभव करना यह मानवीयता पूर्ण संप्रेषणा सूत्र है। वास्तविकता, यथार्थता व सत्यता पूर्ण विधि से, सम्पूर्ण कायिक, वाचिक, मानसिक व कृत–कारित अनुमोदित कार्यक्रमों को परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और प्रामाणिकता व स्वानुशासन रूपी कार्यक्रमों में जानना–मानना, अनुभव करना यह जागृति पूर्ण मानव परम्परा सूत्र है। निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य पूर्ण शिक्षा संस्कार सहजता को जानना–मानना और अनुभव करना यही मानवीय शिक्षा सूत्र है। जीवन सहज सम्पूर्ण क्रियाकलापों को जानना–मानना और अनुभव करना जीवन विद्या सूत्र है और मानवीयता पूर्ण व्यवहार, स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा व व्यक्तित्व में संतुलन, को जानना–मानना व्यवहार सूत्र है। व्यवसाय, व्यवहार, विचार और अनुभव में सामरस्यता विधि को जानना, मानना, अनुभव करना यह मानव परिवार सूत्र है। **(अध्याय: 5 (5.5), पेज नंबर: 252)**

सन्दर्भ: मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2007)

- **भाषा–विधि = कारण, गुण, गणित**

कारण = सहअस्तित्व विधि सहित स्थितिपूर्ण सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहज डूबा, भीगा, घिरा स्पष्ट होना ।

गुण = उपयोगिता–पूरकता विधि से वस्तु–प्रभाव व फल–परिणाम स्पष्ट होना।

गणित = वस्तु मूलक गणना विधि जोड़ने–घटाने के रूप में स्पष्टता।

स्पष्ट होने का तात्पर्य तर्क समाधान संगत विधि सम्पन्नता पूर्वक समझ पाना और समझा पाने से है और जीने देने एवं जीने के रुप में प्रमाण वर्तमान। जीना अनुभव मूलक मानसिकता सहित कायिक–वाचिक–मानसिक, कृत–कारित–अनुमोदित रुप में। व्यापक वस्तु में सम्पूर्ण एक–एक चार अवस्था व चार पदों में स्पष्ट होना भाषा सहज अर्थ है, यह मौलिक अधिकार है। **(अध्याय: 6, पेज नंबर: 77)**

- **आचरण–व्यवहार–कार्य**

मानवीयता पूर्ण आचरण ही सम्पूर्ण विधाओं में न्याय सहज स्रोत है ।

जागृत मानव ही मानवीयता पूर्ण आचरण में–से–के लिए प्रमाण है ।

परंपरा सहज परस्परता में हर नर–नारी प्रमाण होना पाया जाता है ।

- सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन – ज्ञान (अनुभव)
- चैतन्य इकाई रूपी जीवन – ज्ञान (अनुभव)
- मानवीयता पूर्ण आचरण सहित – ज्ञान (अनुभव)
- मानव–लक्ष्य, जीवन–मूल्य सहज विवेचना रूपी – विवेक

  लक्ष्य को प्रमाणित करने तर्क संगत दिशा निश्चयन रूपी – विज्ञान सम्पन्नता सहित

  जीवन–मूल्य, मानव–मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य – सम्बन्धों सहित

मानव परंपरा

वस्तु मूल्य को नियम–नियंत्रण	–	सम्बन्धों में प्रमाणित
संतुलन विधि पूर्वक जीव–प्राण–		कायिक–वाचिक,
पदार्थ वैभव को संतुलित बनाए		मानसिक विधि से
रखते हुए स्थापित करना		करना, कराना, करने के लिए सहमत होना है ।

सम्पूर्ण तर्क नियम, नियंत्रण, सन्तुलन, न्याय, धर्म, समाधान, सत्य सहज अध्ययन, अनुभव, प्रमाण वर्तमान में–से–के लिए कारण, गुण, **गणित** विधि से भाषा प्रयोग **(अध्याय: 7, पेज नंबर: 115)**

सन्दर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010: मुद्रण: 2017)

- इसके बाद हम भ्रममुक्त हो जाएं तो मानव की तरह जिया जाए यही भ्रम से मुक्ति है, मोक्ष है। ना बर्फ को पत्थर बनाना, ना पत्थर को पानी बनाना, ना किसी को आशीर्वाद देना है ना कोई चमत्कार करना है ना कोई सिद्धि दिखानी है। अस्तित्व में न कोई सिद्धि है न कोई चमत्कार है इसको हम सटीकता से देखा है। शाप और आशीर्वाद के बीच कराहता हुआ आदमी आज भी करोड़ों–करोड़ों है। तो इसका एक ही उत्तर है जिस क्षण हम आप जागृति की दिशा में एक भी कदम बढ़ाते हैं उसी मुहूर्त में सम्पूर्ण शाप, ताप, पाप तीनों ध्वस्त हो जाता है। इनका कोई कलंक नहीं रह जाता। वह कैसे इसका उत्तर **गणितीय** विधि से इस प्रकार दिया। जैसे हम **गणित** को हजार बार गलत किए रहते हैं किन्तु जब सही करना आ जाता है तो जीवन भर के लिए सही हो जाता है। जब तक गलती करते रहते हैं तब तक एक बार जो गलती करते हैं दुबारा वो गलती करते ही नहीं, दूसरी गलती ही करते हैं। उसको भी हम घटना के रूप में देख सकते हैं यदि करोड़ बच्चों के लिए **गणित** का प्रश्न दिया जाए; सही उत्तर देते हैं तो सबका एक ही होता है। गलत होते हैं तो करोड़ होता है। हर सामान्य व्यक्ति भी इसका सर्वेक्षण कर सकता है। इस ढंग से हम एक और सूत्र पा गये। हम मानव सही में एक हैं गलती में अनेक। **(पृष्ठ न.–8)**
- इसकी एक झलक **गणितीय** विधि से विखंडन विधि को पता लगाया। विखंडन विधि को ज्यादा से ज्यादा शक्तिशाली अणुबम बनाने के लिए पता लगाया। एटम बम बनाने का प्रयोजन सिवाय नाश के कुछ हो नहीं सकता। नाश तो जितना किया (जैसे हिरोशिमा) इसके अलावा नाश करने के लिए बार–बार जो प्रयोग किए इससे वातावरण की अधिक क्षति हुई है। यह किया मुट्ठी भर लोगों ने भोगेंगे 700 करोड़ों। नाश करने के लिए जो किया उसे सामान्य आदमी क्षतिग्रस्त क्षतिग्रस्त हुआ कैसे? **गणितीय** विधि से 'वर्तमान' शून्य–प्राय: हो जाता है और 'वर्तमान' की तादाद नहीं मिलती है। जबकि है इससे उल्टा, नित्य वर्तमान ही है। वर्तमान के अलावा कुछ होता ही नहीं है। अस्तित्व का सारा वैभव नित्य वर्तमान है जबकि विखंडन विधि से वर्तमान है ही नहीं। इस ढंग से झूठ का पुलिंदा इतना बना चुके हैं कि उससे उभरने के लिए मानव को अपने ऊपर विश्वास करना होगा। जब तक मानव एटम बम पर, तलवार पर, झंडा पर, पत्थर पर विश्वास करेगा तब तक तो आदमी आदमी पर विश्वास करेगा नहीं, यह सच्चाई है और स्वयं पर तब विश्वास होगा जब स्वयं को समझेगा। स्वयं को समझने के लिए हर नर–नारी स्वयं में न्याय धर्म सत्य को सटीक समझना होगा यह जीवन प्रकाशन है। न्याय कहाँ से समझ में आता है संबंध के आधार पर, धर्म कहाँ से आता है व्यवस्था से, सत्य कहाँ से आता है अस्तित्व से। सह– अस्तित्व नृत्य प्रभावी है, सह–अस्तित्व के ढंग से। मानव को छोड़कर शेष तीनों अवस्थाओं के संपूर्ण वैभव व्यवस्था में ही हैं। (**पृष्ठ– 85**)

सन्दर्भ: विकल्प

(संस्करण:2011,मुद्रण: 2016)

Not found

सन्दर्भ: जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2016)

Not found.

सन्दर्भ: मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करण:)

Not found.

सन्दर्भ: संवाद भाग १

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2011)

- काल की पहचान

काल = क्रिया की अवधि।

गणितात्मक भाषा को जब प्रयोगशाला में लाये – तब क्रिया के आधार पर काल को पहचानना शुरू किया। तकलीफ तब शुरू हुई जब हमने विखंडन विधि से **गणित** करना शुरू किया। एक वस्तु को विखण्डित करते–करते इसके एक भाग के साथ कितना "काल" हुआ, यह जब गिनने लगे – तब काल का मूल concept पीछे छूट गया। इसके रहते जो कुछ भी निष्कर्ष निकालते चले गए – वे सब ग़लत होते चले गए।

जैसे – मानव को जब पहचानने जाते हैं, और यदि मानव को हम किसी काल–खंड में पहचानने का प्रयास करते हैं – और काल–खंड को छोटा, और छोटा करते चले जाते हैं, तो मानव स्वयं एक निरंतर क्रिया है – यह पकड़ में नहीं आता। मानव को पहचानने का आधार "क्रिया की अवधि" नहीं है। जिस क्रिया के आधार पर काल को पहचाना था – जैसे धरती का सूरज के चारों तरफ़ चक्कर लगाना – वह भी अपने में निरंतर है। क्रिया को भुलावा देना – अस्तित्व को भुलावा देना है। काल–खंड को शून्य करके किसी क्रिया की समग्रता को पहचानने का कोई तरीका ही नहीं बचता। वस्तु को छोड़ देते हैं, **गणित** को पकड़ लेते हैं। अस्तित्व को भुलावा देकर जो भी निष्कर्ष निकालते हैं – वे अपराधिक ही होते हैं। **गणित** लिखने में आता है – उससे कोई वस्तु मिलता नहीं है। सारी विज्ञान की दौड़ **गणित** के साथ जुडी है।

काल–खंड के आधार पर कोई दर्शन नहीं होता। काल नित्य वर्तमान है। वर्तमान को शून्य करके हमारी गति पहचानने की कोई जगह ही नहीं है। वर्तमान को शून्य करके जो भी निष्कर्ष निकालते हैं – सब निराधार होते हैं।

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अगस्त २००६, अमरकंटक) **(अध्याय:, पेज नंबर: 17–18**)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2008/07/blog-post_8893.html

- **कारण गुण गणित**

कारण–गुण–**गणित** तीनो मिला कर ही मानव–भाषा है।

विज्ञान ने **गणितात्मक** भाषा को अपनाया – गुण और कारण को छोड़ दिया। बिना कारण और गुण के जब **गणित** को पकड़ने गए, तो विखंडन विधि को अपना लिए, **वस्तु–मूलक गणित** को छोड़ दिए।

भक्ति–वाद गुणात्मक भाषा को अपनाया – कारण और **गणित** को छोड़ दिया।

अध्यात्मवाद कारणात्मक भाषा को अपनाया – गुण और **गणित** को छोड़ दिया।

इस तरह विज्ञान (भौतिकवाद), भक्ति–वाद, और अध्यात्मवाद तीनो एक पैर पर खड़े हैं। जबकि कारण–गुण–**गणित** तीनो से मानव को वस्तु–बोध होता है।

कारण विधि – ज्ञान

गुण विधि – सोच–विचार (समाधान)

गणित विधि – गणना

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (जून २००८, बंगलोर) **(अध्याय:, पेज नंबर: 23)**

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2008/07/blog-post_11.html

- **गणितात्मक** भाषा समाधान–समृद्धि पूर्वक जीने की आवश्यकता के आधार पर गणना–विधि पूर्वक "वस्तु–मूलक **गणित**" को समझने के लिए है। मनुष्य का अकेले में कोई कार्यक्रम नहीं है। अकेले मनुष्य में कोई "प्रमाण" नहीं है। अकेले में कोई "व्यवहार" होता नहीं है। दो व्यक्ति से अधिक होने पर ही "परिवार" कहलाता है। परिवार में होने के बाद समाधान–समृद्धि का वैभव प्रमाणित होना आवश्यक हो जाता है। परिवार की आवश्यकताओं में "समृद्धि" से सम्बंधित जितनी भी बात है, उसमें **गणित** के आधार पर भी बात करना बनता है। **वस्तु–मूलक गणित** मानव–उपकारी होना पाया जाता है। मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ मनुष्य जितना भी कार्य करता है – वह सर्वाधिक भाग **गणित**–ग्राही है। **(अध्याय:, पेज नंबर: 231)**

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/10/blog-post_30.html

सन्दर्भ: संवाद भाग २

(संस्करण:2013)

- हर मानव–संतान में कल्पनाशीलता और कर्म–स्वतंत्रता जीवित रहता है। हम अपने बच्चे को कुछ भी समझायें, सिखाएं, करायें – उसके बाद भी उसमें यह कल्पनाशीलता कर्म–स्वतंत्रता जिन्दा रहता है। **गणितीय** विधि से इसे सोचें – जैसे, मैंने आपको कुछ समझाया, उसके बाद आपका कल्पनाशीलता कर्म–स्वतंत्रता आपके पास सुरक्षित है, उसको आप जोड़ते हैं तो आप मुझसे आगे हो ही गए! यही आधार है – आगे की पीढी हमसे आगे ही होगी! आगे की पीढी के हमसे और अच्छा होने की नियति–सहज व्यवस्था बना हुआ है। (**अध्याय:, पेज नंबर:** 85–86)

  http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/06/blog-post_836.html

- **यंत्र और मानव**

विज्ञानी जो भी बात किया – मानव को छोड़ कर किया। "मानव को छोड़ कर बात करनी है" – यह जिद्द पकड़ ली। "यंत्र यह कहता है, **गणित** यह कहता है" – ऐसी व्याख्याएं दी। विज्ञानी का यंत्र पर विश्वास करने का आधार था – यंत्र का बारम्बार वही क्रिया करना। उसके साथ यंत्र स्पीड भी ले आया। "यंत्र जिस स्पीड से काम कर सकता है, मानव उस स्पीड से काम नहीं कर सकता।" "यंत्र विश्वास योग्य है। मानव विश्वास योग्य नहीं है।" – यह ठहराया। जबकि मानव ही देखता है, मानव ही करता है, मानव ही यंत्र बनाता है। विज्ञानी की सोच यंत्र केंद्रित है, मानव–केंद्रित नहीं है।

मानव का "स्वयं पर विश्वास" करने का आधार ही नहीं है विज्ञानी के पास!

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अगस्त २००६, अमरकंटक) (**अध्याय:, पेज नंबर:** 96)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/07/blog-post_13.html

- काल

मनुष्य ने किसी आवर्तनशील क्रिया के आधार पर काल का गणना शुरू किया। जैसे – धरती के अपनी धुरी पर सूर्योदय से सूर्योदय तक घूर्णन करना एक आवर्तनशील क्रिया है। सूर्योदय से सूर्योदय तक की धरती की क्रिया की अवधि को "एक दिन" कहा। उसके आधार पर कितने समय में पेड़ बड़ा होता है, यह मकान कितना पुराना है – यह सब गणना करना शुरू किया। काल की गणना मूलतः धरती की क्रिया की गणना ही है। उसमें कोई तकलीफ भी नहीं है।

फ़िर मनुष्य ने विखंडन विधि से **गणित** करना शुरू किया। जैसे – धरती को भाग–विभाग करके पहचानना, किसी बड़ी राशि को १०–५० भागों में बांटना आदि। इतने तक में कोई तकलीफ नहीं थी। उसी विखंडन विधि से **गणित** करने के क्रम में एक दिन के २४ भाग करके "एक घंटा" को गणना किया। एक घंटे के ६० भाग करके "एक मिनट" का गणना किया। एक मिनट के ६० भाग करके "एक सेकंड" का गणना किया। उसके भी भाग विभाग करते चले गए, अंत में शून्यवत संख्या में काल को ले गए। काल है ही नहीं – कह दिया। जबकि जिस आधार पर समय को पहचाना था – वह क्रिया (धरती का अपनी धुरी पर घूमना) निरंतर चल ही रहा है। धरती अनादि काल से सूर्योदय से सूर्योदय तक क्रिया कर ही रहा है, अभी भी कर रहा है, आगे भी करता रहेगा। आवर्तनशील क्रिया का reference छोड़ कर जो वास्तविकता देखने गए तो "अपनी चाहत के अनुसार" विज्ञानियों ने निष्कर्ष निकाल लिए। काल को शून्यवत करके विज्ञानी अस्तित्व को भुलावा दे दिए। वस्तु को छोड़ दिए, **गणित** को पकड़ लिए। **गणित** लिखने में आता है, गणना करने में आता है – वस्तु उससे कुछ मिलता नहीं है।

(1) वस्तु को छोड़ कर जो भी पहचानने गए वह निराधार हुआ कि नहीं?

(2) इस निराधार सोच, कार्य–कलाप को करने वाला मनुष्य "आवारा पशु" जैसे हुआ कि नहीं?

(३) वर्तमान को शून्य करके विज्ञानी संसार को सच बोला कि झूठ बोला? **(अध्याय:, पेज नंबर: 181–182)**

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/07/blog-post_3799.html

- **प्रश्न: मानव–भाषा का मूल आशय क्या है? क्या समझने के लिए भाषा है?**

इसका उत्तर है – कारण, गुण, **गणित** को समझना। हर क्रिया के साथ कारण है, हर क्रिया के साथ गुण है, हर क्रिया का **गणित** के साथ कुछ दूर तक सम्बन्ध है। **गणित** से ज्यादा गहराई में गुण काम करता है। फ़िर सम्पूर्ण क्रिया के साथ कारण सम्बद्ध रहता है। इस आधार पर कारण, गुण, **गणित** के संयुक्त रूप में मानव–भाषा है। इसे हर भाषा में समानान्तर रूप में पहचाना जा सकता है।

जब आप कोई भाषा को प्रस्तुत करते हैं – तो किस आशय से किया, उसका अनुमान मुझ में होता है। वह अनुमान उस भाषा के अर्थ को छुआ रहता है। वह अर्थ – अस्तित्व में किसी स्थिति, गति, फल, परिणाम को इंगित करता है। यह हमारी कल्पना में आता है। कल्पना के अनुसार जब आगे चलते हैं तो उस वस्तु या घटना तक पहुँचते हैं। घटना घटित जो हुआ – वह वस्तु ही है। घटना जो होने वाला है – वह अनुमान है। घटना जो आचरण में रहता है, या वर्तमान रहता है – उसको हम समझ पाते हैं। इस तरह हम कारण–गुण–**गणित** विधि से हर वर्तमान–भूत–भविष्य की घटनाओं को स्वीकार कर पाते हैं। उसके अनुसार श्रेष्ठता के लिए प्रयत्न करते हैं। **(अध्याय:, पेज नंबर:** 209)

- **मानवीय भाषा**

जीव–चेतना में जीते हुए मनुष्य–जाति ने अनेक काल्पनिक आधारों पर अपने–पराये की दीवारें बनायी हैं – जैसे जाति, समुदाय, रंग, वेश–भूषा आदि। इस धरती पर अनेक भाषाएँ तैयार हुआ है। भाषा के आधार पर भी अपने–पराये की दीवारें बनी हैं। समान भाषा बोलने वाले "अपने", हमसे भिन्न भाषा बोलने वाले "पराये"**!** इसके निराकरण के लिए "मानवीय भाषा" को पहचानने की ज़रूरत है।

सभी मानव–सहज कार्य–कलापों, सोच–विचार, और अनुभव को परस्परता में इंगित कराने के लिए "मानवीय भाषा" है।

कारण, गुण, **गणित** के संयुक्त स्वरूप में "मानवीय भाषा" है।

गणना करने के लिए **गणितात्मक** भाषा है। सम, विषम, और मध्यस्थ गुणों को इंगित करने के लिए गुणात्मक भाषा है। सह–अस्तित्व मूल सत्य को इंगित करने के लिए कारणात्मक भाषा है। इसके अलावा और कुछ इंगित करने की कोई वास्तविकता नहीं है।

इससे पहले अध्यात्म–वादियों ने कारणात्मक भाषा का प्रयोग किया – गुणात्मक और **गणितात्मक** भाषा को नकार दिया। उसके बाद भक्तिवादियों ने अतिशयोक्तियों के साथ गुणात्मक भाषा का प्रयोग किया, कारणात्मक और **गणितात्मक** भाषा को नकार दिया। भौतिकवादियों (प्रचलित–विज्ञान) ने **गणितात्मक** भाषा का प्रयोग किया,

कारणात्मक और गुणात्मक भाषा को नकार दिया। जबकि मानवीय–भाषा कारण, गुण, **गणित** तीनो आधारों पर ही टिकती है।

मध्यस्थ–दर्शन का अध्ययन कराने के लिए परम्परागत भाषा के शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। शब्दों को परिभाषाएं दी गयी हैं – जो परम्परा से नहीं हैं। परिभाषाएं ज्ञान के अर्थ में हैं – जो सह–अस्तित्व में अनुभव पूर्वक होता है। अध्ययन करने वाला अपनी कल्पनाशीलता को इन परिभाषाओं में नियोजित करके अस्तित्व सहज वास्तविकताओं को पहचानता है। सभी भाषाओँ को इन परिभाषाओं से सूत्रित किया जा सकता है। सभी भाषाएँ फ़िर एक ही अर्थ (अस्तित्व सहज वास्तविकता) को इंगित करेंगी। यही भाषाओँ के लेकर बनी अपने–पराये की दीवारों का निराकरण होने का सूत्र है। (अगस्त २००६, अमरकंटक) **(अध्याय:, पेज नंबर: 210–211)**

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/07/blog-post_9270.html

- बोध कराने के लिए प्रबोधक और विद्यार्थी के बीच सम्प्रेश्ना होती है। वह सम्प्रेश्ना ज्यादा स्नेहिल हो तो प्रबोधन जल्दी सफल हो जाता है। **गणितात्मक** भाषा सूखी–सूखी है, और गति के साथ है। गुणात्मक भाषा थोड़ा ज्यादा स्नेहिल है, और प्रयोजन के साथ है। कारणात्मक भाषा पूर्णतया स्नेहिल है, और प्रमाण के साथ है। कारण–गुण–**गणित** के संयुक्त स्वरूप में मानवीय भाषा के प्रयोग से प्रबोधन होता है। प्रबोधन स्नेहिल विधि से ही पल्लवित और पुष्पित होता है। विरोधाभासी विधि से नहीं होता। **(अध्याय:, पेज नंबर: 247)**

  http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/07/blog-post_15.html

- **गणित आंखों से अधिक, और समझ से कम होता है.**

  मनुष्य किसी भी इकाई को सम्पूर्णता के स्वरूप में समझ सकता है।

  समझना आवश्यक है या नहीं? पहले इस बात को तय करना आवश्यक है। इसका उत्तर हर व्यक्ति – चाहे ज्ञानी हो, अज्ञानी हो, विज्ञानी हो – के साथ यही आता है, "समझना आवश्यक है।" समझने की आवश्यकता अस्तित्व में केवल मनुष्य को ही है। पत्थर, पेड़–पौधे, जीव–जानवर को अस्तित्व के स्वरूप को समझने की आवश्यकता नहीं है। "मनुष्य के लिए अस्तित्व को समझना आवश्यक है" – इस सूत्र के आधार पर हम आगे बात करेंगे।

  कैसे समझते हैं? इस पर चलते हैं। आंखों से हमको दिखाई देता है। आंखों के सामने जो १८० अंश तक की परिधि में आता है – उसको "दृष्टि–पाट" कहते हैं। कुल ३६० अंश में से अधिकतम १८० अंश ही दृष्टि–पाट में आता है। इस तरह आधा दृश्य ही आँखों पर प्रतिबिंबित होता है। इस दृष्टि–पाट में हर दृग–बिन्दु आकार और आयतन के रूप में आंखों पर प्रतिबिंबित होता है।

"घन" आंखों द्वारा समझ में आता नहीं है। तब हम **गणित** का सहारा लेते हैं। **गणितीय** भाषा द्वारा हम घन को भी जान लेते हैं, आकार–आयतन की सम्पूर्णता को भी जान लेते हैं। आकार–आयतन की सम्पूर्णता घन में ही समझ आती है। घन के आधार पर वस्तुओं को पहचानने के तरीके हम अपना चुके हैं, कार्य–व्यवहार में ला चुके हैं। आकार–आयतन–घन को समझने में मनुष्य समर्थ हुआ है, और परम्परा के रूप में स्वीकारा है।

गणित आँखों से अधिक, समझ से कम होता है। **गणित** सम और विषम गतियों को आंकलित करता है। मध्यस्थ गति को **गणित** छू भी नहीं पाता। जिस तरह आँख से घन को नहीं समझा जा सकता, उसी तरह **गणित** से मध्यस्थ–गति को नहीं समझा जा सकता। मध्यस्थ **गणित** की सीमा से बाहर की बात है। वस्तु का "होना" और "व्यवस्था में बने रहना" उसका मध्यस्थ–गुण है – जो **गणित** के वश के बाहर की बात है।

कारणात्मक भाषा के प्रयोग से अध्ययन पूर्वक "मध्यस्थ" मनुष्य को समझ में आता है। पूरा दर्शन "मध्यस्थ–दर्शन" है। मध्यस्थ–दर्शन का मतलब है – वर्तमान को समझना = अस्तित्व सहज व्यवस्था को समझना। अस्तित्व में तीन तरह की गतियां हैं – सम, विषम, और मध्यस्थ। जैसे – पैदा होना (सम), मर जाना (विषम), और इन दोनों के बीच में "जीना" – यह मध्यस्थ है। हर अवस्था में सम, विषम, और मध्यस्थ गतियों को पहचाना जा सकता है। किसी अवस्था की मध्यस्थ–गति उस अवस्था के "नित्य बने रहने" या "व्यवस्था में रहने" का स्वरूप है। यह मनुष्य को समझ में आता है तो मनुष्य को अपने स्वयं के व्यवस्था में रहने का स्वरूप भी स्पष्ट होता है, बाकी अवस्थाओं के बने रहने का स्वरूप भी स्पष्ट होता है।

यही वह "समझदारी" है, जिसकी सभी मनुष्यों को आवश्यकता है।

(अगस्त २००६, अमरकंटक) **(अध्याय:, पेज नंबर: 266–267)**

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/08/blog-post_8259.html